जैन धर्म विज्ञान की कसौटी पर ?
या
विज्ञान जैन धर्म की कसौटी पर ?

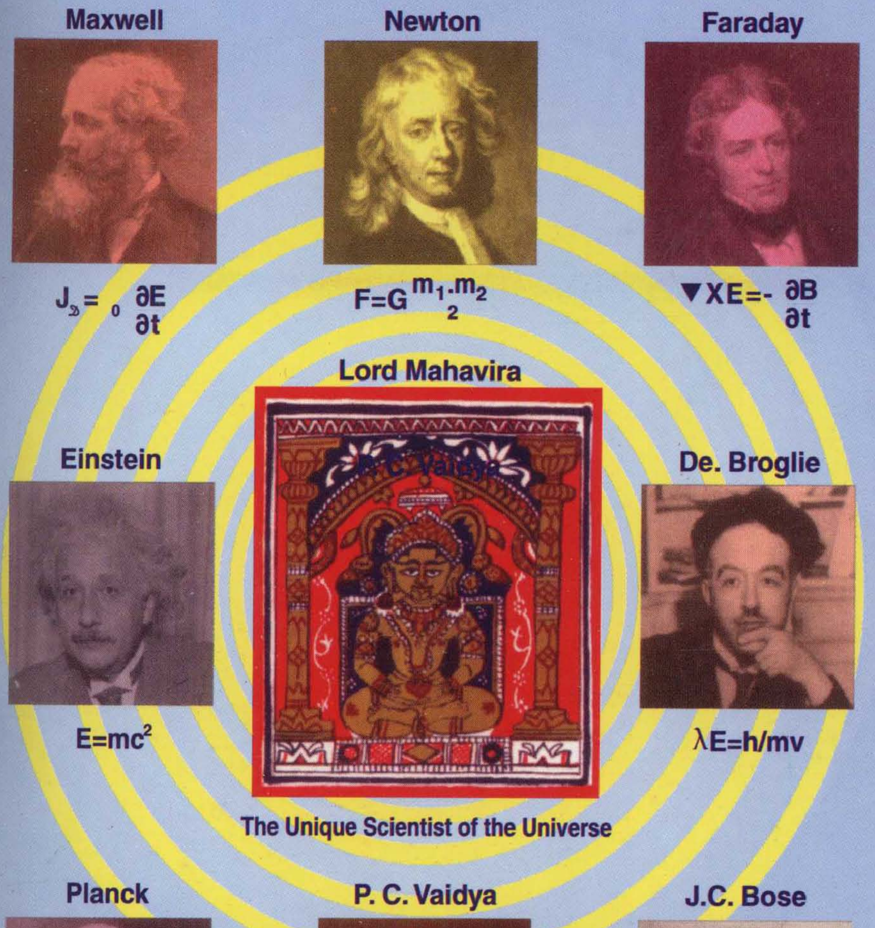

पंन्यास श्री नंदीघोषविजयजी गणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महा महिम राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के साथ
RISSIOS के प्रेरक प. पू. पंन्यास श्री नंदिघोषविजयजी म. सा.

RISSIOS का उद्घाटन करते हुए सुप्रसिद्ध विज्ञानी डॉ. पी. सी. वैद्य
और प. पू. पंन्यास श्री नंदिघोषविजयजी म. सा. लिखित
Scientific Secrets of Jainism का प्रकाशन करते हुए
ईन्स्टिट्युट ऑफ प्लाझमा रिसर्च के डीन डॉ. अभिजितसेन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म विज्ञान की कसौटी पर ?
या
विज्ञान जैनधर्म की कसौटी पर ?

: लेखक :

प. पू. शासन सम्राट आचार्य

श्री विजयनेमि-विज्ञान-कस्तूर-यशोभद्र-शुभंकरसूरिजी महाराज के पट्टधर

प. पू. आचार्य **श्री विजयसूर्योदयसूरिजी** महाराज के शिष्य

प. पू. पंन्यास **श्री नंदिघोषविजयजी** गणि

: प्रकाशक :

भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था

Research Institute of Scientific Secrets from Indian Oriental Scriptures

45 - बी, पारुलनगर, भुयंगदेव चार रस्ता के पास, सोला रोड, अमदावाद - 380 061

फोन नं. 079-27480702, Mobile: 9825071116

Website: http//www.jainscience-rissios.org

E-mail :nandighosh@yahoo.com

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म विज्ञान की कसौटी पर ? या विज्ञान जैनधर्म की कसौटी पर ?

Jainadharma Vijñāna Kī Kasauṭī Para ? Yā Vijñāna Jainadharma Kī Kasauṭī Para ?

ISBN 81-901845-3-9

लेखक : प. पू. पंन्यास श्री नंदिघोषविजयजी गणि

© सर्वाधिकार परोपकार करने वाली संस्थाओं को समर्पित

: प्राप्तिस्थान :

1. सरस्वती पुस्तक भंडार
हाथीखाना, रतनपोल, अमदावाद 380 001
फोन नं. 25356692

2. डॉ. कामिनी बहन एच. वोरा, सिद्धि आई होस्पिटल,
A-203, स्वामीनारायण कॉम्प्लेक्ष, पंचतीर्थ पाँच रास्ता, पालडी,
अमदावाद 380 007 फोन नं. 9825722812

3. श्री कामिनी बहन गोगरी
3/15 मंगल, 76/C रफी अहमद किडवाई रोड, किंग्स सर्कल, माटुंगा,
मुंबई - 400 019 फोन नं. -022-24096330

प्रथमावृत्ति : 5000 प्रतियाँ, 26 अगस्त, 2005

मूल्य : रू. 30 /-

प्रकाशक : भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था
Research Institute of Scientific Secrets from Indian Oriental Scriptures
45 - बी, पारुलनगर, भुयंगदेव चार रस्ता के पास, सोला रोड.
अमदावाद - 380 061
फोन नं. 079-27480702, Mobile: 9825071116

मुद्रंक : देवर्ष प्रिन्टर्स, सहजानंद कोम्प्लेक्ष, शाहीबाग,
अमदावाद 380 004 फोन नं. 079-25627829

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

प. पू. शासनसम्राट तपागच्छाधिपति आचार्य भगवंत श्री विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज के समुदाय के प. पू. सात्त्विक शिरोमणि आचार्य भगवंत श्री विजयसूर्योदयसूरीश्वरजी महाराज के शिष्य प. पू. पंन्यास श्री नंदिघोषविजयजी महाराज की प्रेरणा से स्थापित अपनी संस्था ने जनवरी, 2000 में इनके द्वारा लिखित **"जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो"** नामक गुजराती किताब प्रकाशित की थी । इसके बाद जून, 2001 में उपर्युक्त किताब की ही अंग्रेजी आवृत्ति भी प्रकाशित की गई थी । ये दोनों किताबें जैनदर्शन व विज्ञान में रुचि रखनेवाले विद्वज्जनों ने बहुत सराही ।

ये दोनों किताबें विद्ववद्भोग्य होने से सामान्य लोगों की इच्छा थी कि हमारे जैसे सामान्यज्ञानवाले लोगों के लिये सरल भाषा में और विज्ञान की अतिगहन परिभाषा व चर्चा से मुक्त किताब प्रकाशित हो तो अच्छा होगा । इस बात को ध्यान में रखते हुए हमारी संस्था ने **" जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो "** नामक गुजराती पुस्तक का संक्षिप्त हिन्दी संस्करण **"जैनधर्म विज्ञान की कसौटी पर ? या विज्ञान जैनधर्म की कसौटी पर ?"** नाम से प्रकाशित कर रही है । गुजराती में भी यह प्रकाशित हो चुकी है ।

प. पू. पंन्यास श्री नंदिघोषविजयजी महाराज के मार्गदर्शन व प्रेरणा अनुसार हम आंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रयोगशाला की स्थापना करना चाहते हैं । उससे पूर्व हम इस प्रकार की सैद्धांतिक व प्रायोगिक अनुसंधानयुक्त किताबों का प्रकाशन कर रहें हैं । हमारी इन किताबों को आइ. एस. बी. एन. नंबर भी प्राप्त हुये हैं ।

हमारे ट्रस्ट की ओर से यह छठ्ठा प्रकाशन है । हमें आशा है कि यह प्रकाशन जैन व जैनेतर लोगों में मान्य व आदरणीय बनेगा । इस प्रकार के वैज्ञानिक अनुसंधान और ग्रंथ प्रकाशन के महान भगीरथ कार्य में हमें आर्थिक सहयोग देनेवालें श्री पार्श्व पद्मावती श्वे. मू. पू. जैन संघ, पारुलनगर, अमदावाद ने हमारी संस्था के लिये नींव का कार्य किया है उनका तथा आर्थिक सहयोग देनेवाले अन्य संघ, ट्रस्ट व श्रावक सद्गृहस्थों के भी हम ऋणी हैं । साथ-साथ इसी ग्रंथ का सुंदर व स्वच्छ मुद्रण करने वाले देवर्ष प्रिन्टर्स के मालिक श्री योगेशभाई गांधी का आभार मानते हैं ।

वि. सं. 2061
वैशाख शुक्ल - 14, रविवार
22 मई, 2005

अध्यक्ष
भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था, अमदावाद 380 061

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परम पूज्य शासनसम्राट आचार्य भगवंत **श्रीमद्विजयनेमिसूरीश्वरजी** म.सा. के पट्टधर प. पू. आचार्य **श्रीमद् विजयविज्ञानसूरीश्वरजी** म.सा. के पट्टधर प. पू. प्राकृतविशारद आ. **श्री विजयकस्तूरसूरीश्वरजी** म. सा. के पट्टधर प. पू. आ. **श्री विजययशोभद्रसूरीश्वरजी** म. सा.

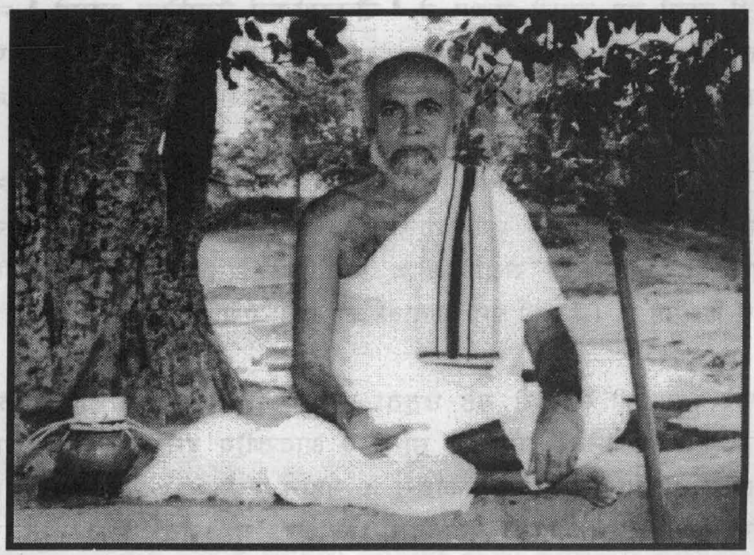

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

विक्रम की बींसवीं सदी के महान ज्योतिर्धर, कापरडाजी, शेरीसा, कदंबगिरि आदि अनेक तीर्थों के उद्धारक, प्राचीन ग्रंथोद्धारक, युगप्रधान, जीवदया के महान ज्योतिर्धर, परमोपकारी, सुगृहीतनामधेय, प्रातःस्मरणीय, नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के तेजपूंज, शासनसम्राट, सूरिचक्रचक्रवर्ती, तपागच्छाधिपति, बालब्रह्मचारी,
परम पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद् विजयनेमिसूरीश्वरजी महाराज साहब के पट्टधर प. पू. सरल स्वभावी आचार्य महाराज श्री विजयविज्ञानसूरीश्वरजी महाराज के पट्टधर प. पू. प्राकृतविशारद सरलस्वभावी आचार्य श्री विजयकस्तूरसूरीश्वरजी म. सा. के पट्टधर
प. पू. प्रवचनकार आचार्य

श्री विजययशोभद्रसूरीश्वरजी म. सा.

के पवित्र चरण कमल में

सादर समर्पित

-- पं. नंदिघोषविजय गणि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुसंधान कार्य के आर्थिक सौजन्यदाता

1.	श्री हठीसिंह केसरीसिंह जैन उपाश्रय ट्रस्ट, पांजरापोल,	अमदावाद
2.	श्री नवरंगपुरा श्वे. मू. पू. जैन संघ	अमदावाद
3.	श्री मानकुवा जैन संघ,	मानकुवा (कच्छ)
4.	श्री पुरिषादानीय पार्श्वनाथ श्वे. मू. पू. जैन संघ, देवकीनंदन प. पू. आ. श्रीविजयहेमचंद्रसूरीश्वरजी म. सा. तथा प. पू. आ. श्रीविजयप्रद्युम्नसूरीश्वरजी म. सा. की प्रेरणा से	अमदावाद
5.	श्री शेफाली श्वे. मू. पू. जैन संघ , वासणा प.पू. मुनिश्री अनंतकीर्तिविजयजी व मुनिश्री शीलमंडनविजयजी की प्रेरणा से	अमदावाद
6.	डॉ. मेहुल कुमार जशवंतलाल शाह गोधरावाले	सूरत
7.	श्री महुवा विशा श्रीमाली तपगच्छ श्वे. मू. जैन संघ	महुवा
8.	श्री आंबावाडी श्वे. मू. जैन संघ, आंबावाडी	अमदावाद
9.	श्री सुमेर टावर श्वे. मू. पू. जैन संघ, भायखला पू. सा. श्री अतुलयशाश्रीजी म. सा. की प्रेरणा से	मुंबई
10.	श्री गगनविहार श्वे. मू. पू. जैन देरासर ट्रस्ट खानपुर	अमदावाद
11.	श्री सुरज झवेरी पब्लिक चरिटेबल ट्रस्ट ह. शैलेषभाई शाह	सुरत
12.	श्री तपागच्छ श्वे. मू. पू. जैन संघ	मांडवी (कच्छ)
13.	श्री घृतकल्लोल पार्श्वनाथ जैन देरासर व साधारण फंड पूज्य मुनि श्री जिनकीर्तिविजयजी की प्रेरणा से	सुथरी (कच्छ)
14.	श्री जीरावला पार्श्वनाथ जैन देरासर ट्रस्ट,	तेरा (कच्छ)
15.	श्री नखत्राणा श्वे. मू. पू. जैन संघ	नखत्राणा (कच्छ)
16.	श्री अंगीया श्वे. मू. पू. जैन संघ	अंगीया (कच्छ)
17.	श्री गुरुकृपा श्वे. मू. पू. जैन संघ, सोला रोड	अमदावाद
18.	श्री निर्णयनगर श्वे.. मू. पू. जैन संघ	अमदावाद
19.	श्री शैलेषभाई वी. शाह, पारुलनगर	अमदावाद
20.	श्रीमती कामिनीबेन उपेन्द्रभाई शाह, पारुलनगर	अमदावाद
21.	श्रीमती निशाबहन मितेशभाई देसाई, पारूलनगर	अमदावाद
22.	पू. सा. श्री सूर्यप्रभाश्रीजी की १०वीं पुण्यतिथि की स्मृति में पू. सा. श्री तरंगलेखाश्रीजी म. सा.की प्रेरणा से	पालीताणा
23.	पू सा. श्री शीलगुणाश्रीजी म. सा. की प्रेरणा से	पालीताणा
24.	श्रीमती दमयंतीबहन बिपिनभाई के. शाह वेजलपुरवाले	थाणा
25.	श्री बिपिनभाई सी. गजरावाला	अमदावाद
26.	श्री शीतलनाथ भगवान संस्थान धुलिया संचालित श्री विमलनाथस्वामी जैन तीर्थ - बलसाणा, पू. आ. श्री विद्यानंदसूरीश्वरजी म. सा. की प्रेरणा से	

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लेखकीय निवेदन

त्रिशलानंदन काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान **श्री महावीरस्वामी** के जन्म को आज 2600 से अधिक वर्ष हो चुके है । श्रमण भगवान **श्री महावीरस्वामी** ने केवलज्ञान पाकर जो बताया वह संपूर्ण सत्य है अतः वह वैज्ञानिक है ।

वस्तुतः, जैनदर्शन पूर्णतया वैज्ञानिक है ऐसा आजके महान विज्ञानी भी स्वीकार करते हैं । भारत के आंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त सुप्रसिद्ध विज्ञानी **डॉ. जयंत विष्णु नारलीकर** (Director & Homi Bhabha Professor, Inter University Centre for Astronomy and Astrophysics, Pune-411 007) ने मेरी किताब **"Scientific Secrets of Jainism"** की समीक्षा में बताया है कि **"प्रस्तुत किताब में लेखक ने दलील की है कि जैन विचारधारा, विज्ञान ने जो दावा किया है उससे भी बढकर ज्यादा परिपक्व, ज्यादा व्यापक व ज्यादा संतोषकारक है ।"**

इसी किताब का संकलन / संक्षेप सामान्य वाचकों को ध्यान में रखकर, **"भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था" (RISSIOS)**, अमदावाद द्वारा प्रकाशित **"जैन दर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो"** नामक गुजराती किताब के आधार पर किया गया है ।

मेरे इस प्रकार के अनुसंधान, संपादन व प्रकाशन के अपूर्व कार्य में सहयोग तथा बल देनेवाले मेरे शिष्य मुनिश्री जिनकीर्तिविजयजी तथा श्री पार्श्व पद्‌मावती श्वे. मू. पू. जैन संघ के कार्यकर्ता भाई श्री सुप्रिमभाई शाह, श्री प्रकाशभाई बी. शाह, श्री अक्षय गांधी, श्री सुनीलभाई लोढा, डॉ. अनिल कुमार जैन तथा श्री संजय शाह को स्मृतिपथ में लाना अनुचित नहीं माना जायेगा । मेरे इस कार्य में परम पूज्य उपाध्याय श्री भुवनचंद्रजी महाराज की प्रेरणा व मार्गदर्शन निरंतर प्राप्त हो रहे हैं एतदर्थ मैं उनका ऋणी हूँ ।

इस किताब का संकलन / संपादन करने में और प्रभु महावीर द्वारा प्ररूपित सनातन सत्य स्वरूप सिद्धांतों का निरूपण व प्रतिपादन करने में यदि जिनागम विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो मैं त्रिविध त्रिविध मिच्छा मि दुक्कडम् देता हूँ ।

वि. सं. 2060 ज्येष्ठ शुक्ल - 5, रविवार **पं. नंदिघोषविजय गणि**
जैन उपाश्रय, सुथरी - 370 490 (कच्छ)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या ?	कहाँ ?
1. श्रमण भगवान महावीर : एक वैश्विक विज्ञानी	09
2. जैन धर्म का वैज्ञानिक महत्त्व	12
3. जैनदर्शन में परमाणु	16
4. जैनदर्शन और आइन्स्टाइन का सापेक्षतावाद	25
5. जैनदर्शन और अपना शरीर	29
6. तीर्थंकर परमात्मा के सुवर्णकमल विहार का रहस्य	33
7. जैनदर्शन में ध्वनि का स्वरूप	38
8. मंत्रजाप के प्रकार और उसका वैज्ञानिक महत्त्व	43
9. भगवान महावीर : त्रिलोकगुरु	48
10. ब्रह्मचर्य : वैज्ञानिक विश्लेषण	54
11. भगवान महावीरस्वामी का तप व उसका वैज्ञानिक रहस्य	60
12. पर्व-तिथि में हरी सब्जी का त्याग क्यो ?	64
13. पानी : सचित्त और अचित्त : समस्या एवं समाधान	67
14. जमींकन्द और बहुबीज	72
15. षड् आवश्यक : एक वैज्ञानिक विश्लेषण	79
16. ईन्द्रिय और ईन्द्रियज्ञान : आधुनिक विज्ञान व जैनदर्शन की दृष्टिसे	87
17. देवनागरी लिपि और उसका वैज्ञानिक महत्त्व	94

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म विज्ञान की कसौटी पर ?
या
विज्ञान जैनधर्म की कसौटी पर ?

1

श्रमण भगवान महावीर : एक वैश्विक विज्ञानी

श्रमण भगवान महावीर का जन्म ई. स. पूर्व 599 में उस समय के मगध देश वर्तमान बिहार की राजधानी क्षत्रियकुंड नगर में हुआ था । उनके पिता का नाम सिद्धार्थ राजा और माता का नाम त्रिशला रानी था । उनका बचपन का नाम वर्धमान था । जब उनकी उम्र 28 साल की हुयी तब उनके माता पिता स्वर्गवासी हुयें । बादमें दो वर्ष बाद 30 वर्ष की उम्र में कार्तिक कृष्ण - 10 के दिन उन्होनें प्रव्रज्या ग्रहण की और आत्मसाधना का मार्ग लिया।

साढे बारह साल की कठिनतम तपश्चर्या व आत्मसाधना के अंत में वैशाख शुक्ल -10 के दिन उनको परम आत्मज्ञान अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त हुआ । उसी केवलज्ञान द्वारा समग्र विश्व के सभी पदार्थों के सभी पर्याय अर्थात् प्रत्येक पदार्थ के भूत-भविष्य और वर्तमान को प्रत्यक्ष देखते हुये वे तीर्थंकर के रूप में प्रसिद्ध हुये । अंत में आश्विन कृष्ण - 30 [o))] दिपावली की शुभ रात्रि को वे अपने भौतिक शरीर का त्याग करके मोक्ष में गये ।

जैन परंपरा में तीर्थंकर के भाव को आर्हन्त्य कहते हैं । यही आर्हन्त्य एक प्रकार की आत्मिक व पौद्‌गलिक शक्ति है । आत्मिक इसलिये कि तीर्थंकर होने वाली आत्मा द्वारा पूर्व भव में भावित सकल जीवराशि का कल्याण करने की उत्कृष्ट भावना का यह परिणाम है, और पौद्‌गलिक इसलिये कि सकल जीवराशि का कल्याण करने की उत्कृष्ट भावना द्वारा प्राप्त तीर्थंकर नामकर्म की पुण्याई का यह परिणाम है । कोई भी कर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पौद्‌गलिक होता है । पुद्‌गल अर्थात् परमाणु । तीर्थंकर नामकर्म की कार्मण वर्गणा में स्थित परमाणुओं में उत्कृष्ट प्रकार के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं । उत्कृष्ट आत्मसाधना द्वारा प्राप्त आत्मशक्ति और तीर्थंकर नामकर्म की पुण्याई द्वारा प्राप्त पौद्‌गलिक शक्ति के समागम द्वारा एक प्रचंड ऊर्जा का प्रादुर्भाव होता है जिसे आर्हन्त्य कहा जाता है । आधुनिक विज्ञान की परिभाषा में इस शक्ति को जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति का एक उत्कृष्ट रूप कहा जा सकता है ।

तीर्थंकर परमात्मा की इस शक्ति का अनुभव विश्व के प्रत्येक जीव को तीर्थंकर परमात्मा के जीवन के महत्त्वपूर्ण पाँच प्रसंग पर होता है । अतः तीर्थंकर परमात्मा के इन पाँच प्रसंग को कल्याणक कहे जाते हैं ।

1. तीर्थंकर परमात्मा की आत्मा देवलोक में से तीर्थंकर के रूप में जन्म लेने के लिये इस पृथ्वी पर माता के गर्भ में उत्पन्न होते ही उनके आर्हन्त्य के अनुभव के रूप में विश्व की प्रत्येक आत्मा को सुख का अनुभव होता है । तीर्थंकर के इस अज्ञात / अगोचर / अगम्य किन्तु भव्य प्रसंग को *च्यवनकल्याणक* कहते हैं ।

2. तीर्थंकर परमात्मा का भौतिक शरीर के रूप में अवतरण होने की प्रक्रिया यानि कि जन्म । इस समय उनके तीर्थंकर नामकर्म की पुण्याई की प्रचंड ऊर्जा के प्रभाव से विश्व की प्रत्येक आत्मा को अलौकिक आह्लाद की अनुभूति होती है और सर्वत्र प्रकाश फैल जाता है । अतएव इस प्रसंग को *जन्मकल्याणक* कहा जाता हैं । गृहस्थ अवस्था में वे जहाँ भी जाते हैं वहाँ सब का कल्याण करते हैं । उनके जीवन का प्रत्येक क्षण सभी का कल्याण करने वाला होता है ।

3. बादमें आता है आत्मासाधना के अलौकिक प्रक्रिया का मंगल प्रारंभ स्वरूप प्रव्रज्या ग्रहण का क्षण । अभी तक परकल्याण की केवल भावना ही थी । अब उसी भावना को चरितार्थ करने के लिये पुरुषार्थ करने की मंगल शुरूआत होती है । संसारत्याग के इस भव्य प्रसंग को *दीक्षाकल्याणक* कहते हैं ।

4. संसारत्याग के बाद वे स्व और पर, उभय का कल्याण करने वाली कठिन आत्मसाधना के अंतिम फलस्वरूप केवलज्ञान प्राप्त करते हैं । तीर्थंकर परमात्मा को कैवल्य प्राप्ति के साथ ही उनके तीर्थंकर नामकर्म की प्रचंड ऊर्जा का सभी को प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है । यह ऊर्जा इतनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रचंड होती है कि वे जहाँ जहाँ विहार करते हैं, वहाँ वहाँ

उनके जाने के बाद भी प्रत्येक जीव को छः छः माह तक केवल सुख और सुख का ही अनुभव होता है । अतः परमात्मा के इस प्रसंग को *केवलज्ञानकल्याणक* कहा जाता है ।

5. आयुष्य कर्म की सत्ता जब तक होती है तब तक उपदेश देकर परमात्मा सभी जीवों का कल्याण करतें हैं किन्तु आयुष्य कर्म खत्म होते ही परमात्मा इसी पार्थिव शरीर का त्याग करके शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त करतें हैं । परमात्मा के मोक्षगमन स्वरूप इसी प्रसंग को *निर्वाणकल्याणक* कहतें हैं ।

ऐसे परम पवित्र महापुरूष श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के जन्म को आज 2600 साल से ज्यादा और निर्वाण को 2530 साल से ज्यादा समय व्यतीत हो चुका है । उनके द्वारा प्ररूपित सिद्धांत आज भी विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरतें हैं । अतएव वे सर्वग्राह्य व सर्वमान्य होते हैं ।

The notion that all opposites are polar—that light and dark, winning and losing, good and evil, are merely different aspects of the same phenomenon—is one of the basic principles of the Eastern way of life. *Fritjof Capra*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

2

जैन धर्म का वैज्ञानिक महत्त्व

ज्ञान तीन प्रकार से होता है । 1. अनुभव से - अवलोकन द्वारा, 2. तर्क अर्थात् चिंतन द्वारा, 3. आंतरस्फूरणा द्वारा अर्थात् आत्मप्रत्यक्ष । अवलोकन द्वारा प्राप्त अर्थात् चाक्षुषप्रत्यक्ष या इन्द्रियप्रत्यक्ष ज्ञान क्वचित् भ्रम भी हो सकता है अर्थात् वह निरपेक्ष सत्य (Absolute truth) न होकर सापेक्ष सत्य (Relative truth) ही होता है । तो दूसरी ओर तर्क / चिंतन द्वारा प्राप्त ज्ञान बुद्धि का विषय है और उसकी भी मर्यादा होती है । कुछेक अनुभव ज्ञान और सभी प्रकार का आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान कभी भी बुद्धि का विषय बन नहीं पाता । वह हमेशां तर्क / बुद्धि से पर (Beyond logic) होता है ।

तर्क अर्थात् चिंतन द्वारा प्रस्थापित सिद्धांत अनुभव - अवलोकन की कसौटी पर खरे उतरनेके बाद ही वे विज्ञान में स्थान पाते हैं । जबकि आंतरस्फूरणा द्वारा प्राप्त आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान ऐसी कसौटी की कोई आवश्यकता नहीं है । हालाँकि, आंतरस्फूरणा से प्राप्त ज्ञान उसी व्यक्ति के लिये तथा समग्र समाज के लिये काफी महत्त्वपूर्ण और समाज के अधिकांश वर्ग को वह मान्य होने के बावजूद भी उस ज्ञान को आज के विज्ञान में कोई स्थान नहीं है । किन्तु केवल इसी कारण से ही आंतरस्फूरणा से प्राप्त ज्ञान का महत्त्व कम नहीं होता है । उसमें भी आयुष्य के अंतिम क्षण में या आपातकालीन प्रसंग पर, जहाँ विज्ञान भी कामयाब नहीं होता है, उसी क्षण यही आध्यात्मिक ज्ञान ही जीवन का अमृत बन पाता है ।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल के महान आध्यात्मिक पुरूषों ने अपनी योगसाधना / ध्यानसाधना द्वारा किये कर्मों के क्षय से, स्वयं को प्राप्त ज्ञान का शब्दों में निरूपण किया है । अर्थात् आंतरस्फूरणा से प्राप्त आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान को यथाशक्य उन्होंने शास्त्र में बताया है । यद्यपि वह भी संपूर्ण सत्य न होकर केवल सत्य का कुछेक अंश ही होता है । क्योंकि संपूर्ण सत्य तो खुद तीर्थंकर परमात्मा भी नहीं कह पाते हैं । उसका कारण यह है कि उनके आयुष्य की मर्यादा होती है और निरूपण करने के पदार्थ अनंत होते हैं तथा वाणी में अनुक्रम से ही पदार्थों का निरूपण हो सकता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन के धर्मग्रंथ / आगमों के प्रणेता, जिनको केवलज्ञान स्वरूप आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा तीनों लोक के सर्व द्रव्य के तीनों काल के सभी पर्याय / रूपांतर (Phases) का हस्तामलकवत् (हाथ में स्थित निर्मल जल की तरह) प्रत्यक्ष हुआ है, वही तीर्थंकर परमात्मा है ।

जैनदर्शन अर्थात् जैन तत्त्वज्ञान को आधुनिक विज्ञान के साथ बहुत ही तालमेल है । हालाँकि, जैन विज्ञान वस्तुतः गुणात्मक (Qualitative) है और वह तीर्थंकर परमात्मा द्वारा कथित है जबकि आधुनिक विज्ञान महदंश में परिमाणात्मक (Quantitative) है तथापि दोनों (जैनदर्शन व आधुनिक विज्ञान) में उनके असली ख्यालों का आधार तर्क ही है । आल्बर्ट आइन्स्टाइन ने उनके "विज्ञान और धर्म "(1940, Nature, Vol. 146, P. 605-607) नामक लेख में कहा है :

"Science, without religion is lame;
Religion, without science is blind."
(बिना धर्म विज्ञान पंगु है, और बिना विज्ञान, धर्म अंधा है।)

जैनदर्शन पूर्णतया वैज्ञानिक धर्मदर्शन है । आइन्स्टाइन आगे लिखते हैं:

"Science is the attempt at the posterior reconstruction of existence by the process of conceptualization."
(नयी अवधारणा प्रस्तुत करने की प्रक्रिया द्वारा किसी भी घटना या पदार्थ की पश्चात्कालीन पुनर्रचना का प्रयत्न ही विज्ञान है ।)

जैनदर्शन में सजीव व निर्जीव पदार्थ सहित इसी ब्रह्मांड की प्रत्येक अवस्था का विचार किया गया है । आइन्स्टाइन भी कहते हैं :

" A person who is religiously enlightened appears to me to be one who has, to the best of his ability, liberated himself from the fetters of his selfish desires."
(कोई भी मनुष्य, जो धार्मिक रीति से प्रबुद्ध या संस्कारसंपन्न है, वह ऐसी व्यक्ति है जिसने यथाशक्ति स्वंय को अपनी स्वार्थमय इच्छाओं से मुक्त किया है, मेरी दृष्टि से वह सबसे ज्यादा शक्तिवान् प्रतीत होता है ।)

इस प्रकार आइन्स्टाइन जीवन जीने की जैन पद्धति का वर्णन करते हैं।

एक दृष्टि से विज्ञान व अध्यात्म, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलुं है । तथापि एक बात स्पष्टतया ख्याल में रहे कि विज्ञान की दुनिया में कुछ भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंतिम सत्य नहीं है । जबकि अध्यात्म में अंतिम सत्य ही मुख्य है । विज्ञान कभी भी अंतिम सत्य या संपूर्ण सत्य पा सकता नहीं है । हाँ, वह अंतिम सत्य या संपूर्ण सत्य के नजदीक आ सकता है । अंतिम सत्य पाने के लिये विज्ञान के अत्याधुनिक उपकरण भी अनुपयोगी व अपूर्ण मालुम पड़ते हैं क्योंकि वहाँ आत्मा के ज्ञानस्वरूप उपकरण ही अनिवार्य होते हैं और यह ज्ञानस्वरूप साधन अध्यात्ममार्ग बिना कहीं भी उपलब्ध नहीं है । अतः विश्व के महान भौतिक विज्ञानी भी विश्व के सभी पदार्थों के गुणधर्म व ब्रह्मांड की संरचना और अन्य परिबलों का गणित व विज्ञान की मदद से रहस्य पानेका प्रयत्न करते हैं और उस प्रयत्नों के अंत में भी इस विश्व के संचालक बल की शक्ति का रहस्य न पाने पर, वे भी ईश्वर या कर्म जैसी किसी अदृश्य सत्ता का स्वीकार करते हैं ।

इसी वजह से भूतकाल के आइन्स्टाइन, ओपेनहाइमर जैसे प्रखर विज्ञानी तथा वर्तमान काल के डॉ. अबदुस्सलाम, डॉ. अब्दुल कलाम, डॉ. हरगोविंद खुराना, डॉ. हेलीस ओडाबासी जैसे विज्ञानी भी ईश्वर में श्रद्धा रखते हें ।

उनकी श्रद्धा किसी धर्म या संप्रदाय से संबद्ध न होकर अर्थात् अंधश्रद्धा न होकर विशाल अर्थ में धर्म ऊपर की बुद्धिजनित निष्पक्ष श्रद्धा होती है । और सत्य का स्वीकार ही ऐसी श्रद्धा का महत्त्वपूर्ण लक्षण है । अतएव डॉ. हेलीस ओडाबासी जैसे विज्ञानी स्वयं मुस्लीम होने पर भी, उन्होंने अपनी किताब के पहले प्रकरण के शुरु में ही कहा है :

The idea that all matter consists of aggregate of large number of relatively few kinds of fundamental particles is an old one. Traces of it are found in Indian philosophy about twelve centuries before Christian Era."

यदि ऐसे प्रगतिशील विज्ञानी भी ऐसा कथन करते हैं कि इसी अणुविज्ञान का मूल भारतीय तत्त्वज्ञान में निहित है तो हमारे देश के विज्ञानीओं का फर्ज है कि वे इसी दिशा में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान करें ।

कार्मण वर्गणा स्वरूप कर्म पुद्गल स्कंध / कण संबंधी जैन विभावना ख्याल तथा द्रव्य-शक्ति स्वरूप पुद्गल इत्यादि सारी बातें अच्छी तरह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समझी-समझायी जा सकती नहीं है । थोड़े समय पूर्व ही विज्ञान ने इलैक्ट्रॉन व फोटॉन का आविष्कार किया । जबकि जैनदर्शन ने प्राथमिक कण के रूप में कार्मण वर्गणा के कण बताये हैं । कार्मण वर्गणा की विभावना जैनदर्शन की अनुपम भेंट है क्योंकि केवल यही कण आत्मा के साथ संयोजित हो सकते हैं । जैन विज्ञान ही एक ऐसा विज्ञान है जो प्राकृतिक भौतिक घटनाओं के साथ-साथ आधिभौतिक (Super natural) घटना, सजीव व निर्जीव के संयोजन, चैतन्य और भौतिक विज्ञान को समझा सकता है ।

भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम प्रवाह स्वरूप जैन दर्शन के प्राचीन ग्रंथों में बहुत से वैज्ञानिक सिद्धांत पाये जाते हैं । आधुनिक युग में नयी पीढी के आगे आधुनिक गणित व वैज्ञानिक साधन द्वारा इन सिद्धांतों का प्रतिपादन करना काफी जरूरी है ।

The notion that all scientific models and the theories are approximate and that their verbal interpretations always suffer from the inaccuracy of our language was already commonly accepted by scientists at the beginning of this century, when a new and completely unexpected development took place. The study of the world of atoms forced physicists to realize that our common language is not only inaccurate, but totally inadequate to describe the atomic and subatomic reality.

Fritjof Capra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

3

जैनदर्शन में परमाणु

प्राचीन जैन धर्मग्रंथ के अनुसार असल में छः द्रव्य हैं : 1. जीव, 2. धर्म, 3. अधर्म, 4. आकाश, 5. काल और 6. पुद्‌गल । इनमें से धर्म अधर्म और आकाश पूर्णतः अमूर्त हैं अर्थात् वे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श व आकृति रहित हैं। जबकि जीव द्रव्य पुद्‌गल के संयोग से मूर्तत्व प्राप्त करता है । अन्यथा शुद्ध आत्म द्रव्य भी अमूर्त अर्थात् निरंजन निराकार है । जैन दार्शनिकों ने समय/काल को भी एक द्रव्य माना है । यह जैनदर्शन की एक विशेषता है ।

संक्षेप में संपूर्ण ब्रह्मांड की प्रत्येक चीज, चाहे वह सूक्ष्म हो या स्थूल, दृश्य हो या अदृश्य, इन्द्रियगम्य हो या इन्द्रियातीत, सब का समावेश केवल पुद्‌गल द्रव्य या पुद्‌गलसंयुक्त जीव द्रव्य में होता है । और पुद्‌गल द्रव्य का अतिसूक्ष्मतम कण जिसके दो भाग भूतकाल में कभी भी नहीं हुये, वर्तमान में नहीं होते हैं और भविष्य में कभी भी उनके दो भाग होने की संभावना भी नहीं है ऐसे सूक्ष्मतम कण को परमाणु कहा जाता है । ऐसे बहुत से सूक्ष्मतम परमाणु इकट्‌ठे होकर विश्व की कोई भी चीज का निर्माण कर सकते हैं । जैन सिद्धांत के अनुसार पुद्‌गल द्रव्य में अनंत शक्ति है । यद्यपि आत्मा (शुद्ध जीवतत्त्व) में भी अनंत शक्ति है, किन्तु दोनों में बहुत अन्तर है । आत्मा की शक्ति स्वनियंत्रित है जबकि पुद्‌गल की शक्ति परनियंत्रित है ।

जैनदर्शन के ग्रंथों में इस संपूर्ण ब्रह्मांड के और उसके प्रत्येक परमाणु व उस परमाणु-समूह से निष्पन्न पदार्थों के बारे में विस्तृत विवेचना की गई है और आचारांग नामक पवित्र जैन आगम में बताया है कि --

"जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।"
(जो एक को पहचानता है वह सभी को पहचानता है, जो सभी को पहचानता है वह एक को भी पहचानता है ।)

यही एक और सर्व क्या है उसकी स्पष्टता करते हुए टीकाकार महर्षि श्री शीलांकाचार्यजी कहते हैं कि यह एक का मतलब इसी ब्रह्मांड के प्रत्येक पदार्थ का आदिभूत परमाणु जिसका कभी भी किसी भी प्रकार से विभाजन नहीं होता है अर्थात् जो सदा के लिये अविभाज्य है । इस दृष्टि से वर्तमान विज्ञानमान्य परमाणु, परमाणु है ही नहीं क्योंकि उसका इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न्युट्रॉन, क्वार्क इत्यादि भिन्न भिन्न प्रकार के सूक्ष्म कण में विभाजन होता है।

आज तक प्रोटॉन को अविभाज्य माना जाता था, किन्तु नवीनतम अनुसंधान से पता चलता है कि इस प्रोटॉन के मूलभूत कण क्वार्क हैं और तीन क्वार्क इकट्ठे होकर एक प्रोटॉन होता है ।

जैनदर्शन की मान्यता के अनुसार परमाणु, इस ब्रह्मांड के सभी पदार्थों के लिये आदिभूत इकाई है और यही एक परमाणु को पूर्णतः पहचानने का मतलब है संपूर्ण ब्रह्मांड के सभी पदार्थ को पहचानना क्योंकि यही एक परमाणु भूतकाल में इसी ब्रह्मांड के प्रत्येक पदार्थ के भाग के रूप में था और भविष्य में प्रत्येक पदार्थ की आदिभूत इकाई के रूप में रहनेवाला है । अतः वही एक ही परमाणु को पूर्णतः पहचानने के लिये समग्र ब्रह्मांड के प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान जरूरी है । अतः कहा गया है कि जो एक परमाणु का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है, उसे समग्र ब्रह्मांड का ज्ञान हो जाता है और जिसको समग्र ब्रह्मांड का ज्ञान है वह एक परमाणु को पूर्णतः जानता है ।

पुद्गल द्रव्य के प्रत्येक परमाणु में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होता है और वही पुद्गल का लक्षण है । अतः जहाँ भी किसी भी यंत्र से या इन्द्रिय से वर्ण या गंध या रस या स्पर्श का अनुभव होता है, वहाँ परमाणुसमूह अवश्य होते हैं । और उस पदार्थ को पौद्गलिक माना जाता है । क्वचित् परमाणुसमूह बहुत ही अल्प मात्रा में होनेसे उसी पदार्थ के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श अपनी इन्द्रिय से ग्राह्य नहीं होते हैं किन्तु इसी वजह से उसके अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता । उदाहरण के तौर पर - अल्ट्रावायोलेट (पारजामुनी) किरणें और इन्फ्रारेड (अधोरक्त) किरणें, जो चक्षु से ग्राह्य नहीं हैं तथापि फोटोग्राफिक प्लेट पर उसकी असर पायी जाती है ।

जैन ग्रंथो में शब्द (ध्वनि), अंधकार, उद्योत, (ठंडा प्रकाश, जैसे चंद्र का प्रकाश), आतप (ठंडे पदार्थ में से निकलने वाला उष्ण प्रकाश) अर्थात् सूर्य का प्रकाश, प्रभा अर्थात् प्रकाश का अनियंत्रित प्रसार या परावर्तन या व्यतिकरण, इत्यादि को पुद्गल के विकार स्वरूप बताया हैं । अर्थात् पुद्गल के सूक्ष्मतम अणु (परमाणु) से निष्पन्न माने हैं । पुद्गल का वर्णन करते हुए तत्त्वार्थ सूत्र (रचयिता : वाचक श्री उमास्वातिजी) के पाँचवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय में बताया है कि "पूरयन्ति गलयन्ति इति पुद्गलाः"। पुद्गल द्रव्य में उसके नाम के अनुसार पूरण व गलन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। सभी प्रकार के पौद्गलिक पदार्थों में सर्जन अर्थात् नये नये परमाणुओं के जुडने की तथा पूर्व के परमाणुसमूह में से कुछेक की अलग होने की प्रक्रिया अर्थात् विसर्जन निरंतर चलता ही रहता है। सूक्ष्मबुद्धि से देखने पर कोई भी पदार्थ निरंतर एक समान कभी भी नहीं रहता है। जैसे अपने शरीर में अरबों कोशिकायें हैं, उसमें से हररोज लाखों कोशिकाओं का विनाश होता है और दूसरी प्रायः उतनी ही या उनसे कम या ज्यादा कोशिकाओं का निर्माण होता रहता है।

परमाणु भौतिकी में प्राप्त बंध (fussion) व भेद (fission) की प्रक्रियायें पूरण व गलन के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। इन दोनों प्रक्रिया में शक्ति की जरूरत होती है। कुछेक परिस्थिति में बंध (fussion) की प्रक्रिया से अणुशक्ति प्राप्त होती है तो कुछेक परिस्थिति में भेद (fission) की प्रक्रिया से अणुशक्ति प्राप्त होती है।

परमाणु प्रक्रिया में इस्तेमाल किये जाने वाले युरेनियम तथा रेडियम में से तीन प्रकार के किरण (आल्फा, बीटा, गामा किरण) निकलते हैं। ये किरण भी एक प्रकार के कणों की बारिश ही है और यह ऑसीलोस्कोप जैसे यंत्र में स्पष्टरूप से देखी जा सकती है। आल्फा किरण के कण हिलियम के अणु की नाभि जैसे होते हैं। बीटा किरण में इलेक्ट्रॉन होते हैं। जबकि गामा किरण प्रकाश के किरण जैसे होते हैं। प्रकाश के किरण में भी फोटॉन कण होते हैं।

जैन ग्रंथों के अनुसार परमाणुसमूह के प्रकार को वर्गणा कहा जाता है। संपूर्ण ब्रह्मांड में ऐसी वर्गणाओं के अनंतानंत प्रकार हैं किन्तु जीवों के लिये उपयोग में आनेवाली वर्गणा मुख्य रूप से आठ प्रकार की है। 1. औदारिक वर्गणा, 2. वैक्रिय वर्गणा, 3. आहारक वर्गणा, 4. तैजस् वर्गणा, 5. भाषा वर्गणा, 6. श्वासोच्छ्वास वर्गणा, 7. मनो वर्गणा, व 8. कार्मण वर्गणा।

वर्गणा अर्थात् किसी भी एक निश्चित संख्या में जुडे हुए परमाणुओं का समूह। प्रथम वर्गणा अर्थात् इस ब्रह्मांड में विद्यमान भिन्न भिन्न परमाणु, जिनका स्वतंत्र अस्तित्व है। उन सभी परमाणुओं का समावेश प्रथम वर्गणा में होता है। उसी तरह दूसरी वर्गणा का अर्थ दो दो परमाणुओं के समूह।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय वर्गणा का अर्थ तीन तीन परमाणुओं के समूह । ऐसे अनंत परमाणुओं के समूह रूप परमाणुसमूह का समावेश औदारिक वर्गणा में होता है । इसी औदारिक वर्गणा के प्रत्येक परमाणुसमूह में अनंत परमाणु होते हैं । और उससे ही वर्तमान विश्व के प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाले प्रायः सभी पदार्थ बने हैं ।

इन वर्गणाओं के परमाणुसमूह में जैसे-जैसे परमाणुओं की संख्या बढती है वैसे-वैसे उसमें परमाणुओं का परिणाम ज्यादा ज्यादा सूक्ष्म होता जाता है । वर्तमान सजीव सृष्टि या देव और नारक को छोडकर सभी जीवों के शरीर इसी औदारिक वर्गणा के परमाणुसमूह से निष्पन्न हैं । औदारिक वर्गणा में स्थित परमाणु बहुत ही स्थूल है ।

जबकि वैक्रिय वर्गणा के परमाणुसमूह में इस औदारिक वर्गणा के परमाणुसमूह में स्थित परमाणु से ज्यादा परमाणु होते हैं । अतः स्वभावतः उसका परिणाम ज्यादा सूक्ष्म बनता है ।

तीसरे क्रम में आनेवाली आहारक वर्गणा के परमाणुसमूह में वैक्रिय वर्गणा के परमाणुसमूह से ज्यादा परमाणु होते हैं । अतः वे ज्यादा घन व सूक्ष्म होते हैं । इस आहारक वर्गणा के परमाणुसमूह का उपयोग विशिष्ट प्रकार के ज्ञानी साधु-संतपुरूष ही कर सकते हैं । वर्तमान समय में इस पृथ्वी पर ऐसे कोई ज्ञानी संत पुरूष नहीं है, अतः इस वर्गणा के परमाणुसमूह का कोई उपयोग नहीं है ।

उसके बाद चौथे क्रम में आयी तैजस् वर्गणा के परमाणुसमूह में स्थित परमाणु ज्यादा सूक्ष्म होते हैं । और प्रत्येक सजीव पदार्थ का सूक्ष्म शरीर इसी वर्गणा के परमाणुसमूह से निष्पन्न है । इस वर्गणा के परमाणुसमूह का मुख्य कार्य उसी सजीव पदार्थ के शरीर में आहार का पाचन करना है और उससे भूख लगती है । बाद में उससे भी ज्यादा सूक्ष्म परिणामवाले परमाणुओं के समूह स्वरूप भाषा वर्गणा है । इस वर्गणा के परमाणुसमूह का उपयोग केवल प्राणी ही कर सकते हैं । किन्तु वनस्पति इत्यादि जिनको केवल एक ही इन्द्रिय है वे इस भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह का उपयोग नहीं कर सकते हैं । संक्षेप में, आवाज भी पौद्‌गलिक है ।

श्वासोच्छ्‌वास वर्गणा के परमाणुसमूह के परमाणु, भाषा वर्गणा के परमाणु से ज्यादा सूक्ष्म है । इनका उपयोग सजीव सृष्टि के सभी जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं । और बिना श्वासोच्छ्वास कोई भी जीव जी नहीं सकता है ऐसा आधुनिक विज्ञान भी कहता है । जैन शास्त्रों के अनुसार वनस्पति सहित पृथ्वी अर्थात् पत्थर, मिट्टी इत्यादि, पानी, अग्नि व वायु में भी जीव हैं । वे भी श्वासोच्छ्वास की क्रिया करते हैं तब इस वर्गणा के परमाणुसमूह का उपयोग निश्चितरूप से करते हैं ।

मनो वर्गणा के परमाणुसमूह के परमाणु की संख्या श्वासोच्छ्वास वर्गणा के परमाणुसमूह में स्थित परमाणुओं की संख्या से ज्यादा होती है । इस वर्गणा के परमाणुसमूह का उपयोग मनवाले मनुष्य व प्राणी कर सकते हैं । इनका विशेष उपयोग विचार करने में ही होता है । वर्तमानकालीन विज्ञानी भी मन को तीव्र गतिवाला मानते है क्योंकि अपना मन एक सैकंड में या उनसे भी सूक्ष्म समय में लाखों या करोडों माईल दूर जा सकता है और उनके बारे में विचार कर सकता है । यह चमत्कार मन व मनोवर्गणा के परमाणुसमूह का ही है ।

अब अंत में अत्यंत सूक्ष्म परमाणुओं के समूह स्वरूप कार्मण वर्गणा की बात आती है । इस वर्गणा के परमाणुसमूह में सब से ज्यादा परमाणु होते हैं । इस वर्गणा का उपयोग प्रत्येक सजीव पदार्थ करता है । सभी सजीव पदार्थ की आत्मा से संबद्ध कर्म, इस कार्मण वर्गणा के परमाणुसमूह स्वरूप ही होते हैं । यदि कोई विज्ञानी, इस वर्गणा के परमाणुओं को किसी भी यंत्र से देखने में समर्थ हो सके, तो वह उसी व्यक्ति या सजीव पदार्थ के भूत-भविष्य व वर्तमान देखने में समर्थ हो सकता है किन्तु इस वर्गणा के परमाणु किसी भी यंत्र से नहीं देखे जा सकते हैं । इसिलिए तो आध्यात्मिक शक्ति व अतीन्द्रिय ज्ञान चाहिये । जो वर्तमान समय में प्राप्त करना अशक्य नहीं तथापि बहुत दुर्लभ तो है ही ।

विज्ञानीयों ने अणु, परमाणु तथा इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, पोझिट्रॉन, क्वार्क इत्यादि बहूत से मूलभूत सूक्ष्म कणों का आविष्कार किया हैं वे सभी इस वर्गणा के प्रथम प्रकार औदारिक वर्गणा में आ सकते हैं ।

जैन शास्त्रकारों ने पुद्गल द्रव्य के वर्णन में इसके वर्ण के मुख्य रूप से पाँच प्रकार बताये हैं । सफेद, लाल, पीला, नीला (भूरा) व काला । चित्रकाम के विषय में सफेद व काले रंग को छोडकर मुख्यरूप से तीन रंग बताये हैं । बाकी के सभी रंग इन तीनों रंगों के संयोजन से बनते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रंगीन छबि के छपाई काम में भी लाल, पीला, भूरा व काले रंग का उपयोग होता है ।

गंध के दो प्रकार हैं :1. सुगंध, और 2. दुर्गंध ।

रस के पाँच प्रकार हैं : 1. कडुआ, 2. तीखा, 3. कसैला, 4. खट्टा, 5. मधुर । खारे (लवण) रस की यहाँ गिनती नहीं की है किन्तु कहीं कहीं खारे रस को छठ्ठे रस के रूप में ग्रहण किया है ।

स्पर्श के आठ प्रकार हैं : 1. गुरु अर्थात् भारी, 2. लघु अर्थात् हलका, 3. मृदु / कोमल, 4. कर्कश, 5. शीत / ठंडा, 6. उष्ण / गर्म, 7. स्निग्ध / चिकना, 8. रुक्ष अर्थात् खुरदरा ।

एक ही स्वतंत्र परमाणु में शीत या उष्ण, और स्निग्ध या रुक्ष ऐसे केवल दो ही स्पर्श होते हैं । जबकि अनंत परमाणुओं से निष्पन्न परमाणुसमूह में कभी कभी परस्पर विरुद्ध न हो ऐसे चार स्पर्श होते हैं । तो कुछेक में आठों स्पर्श होते हैं । ऊपर बतायी गई आठों प्रकार की वर्गणामें से प्रथम चार प्रकार की वर्गणा के परमाणुसमूह में आठों प्रकार के स्पर्श होते हैं तो शेष चार प्रकार की वर्गणा के परमाणुसमूह में चार प्रकार के स्पर्श होते हैं ।

बंगाली विज्ञानी डॉ. सत्येन्द्रनाथ बोस का बोस-आइन्स्टाइन स्टॅटिस्टिक्स, डॉ. प्र. चु. वैद्य का किरणोत्सारी तारा के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र संबंधित अनुसंधान जैनदर्शन की परमाणु संबंधित कुछेक अवधारणाओं को समर्थन देते हैं ।

बोस-आइन्स्टाइन स्टॅटिस्टिक्स आदर्श वायु के कण व फोटॉन की समझ देता है । जैनदर्शन अनुसार इसी ब्रह्मांड में आकाश प्रदेश (Space-points) मर्यादित प्रमाण में हैं । जबकि पुद्‌गल परमाणु की संख्या अनंत है । एक आकाश प्रदेश (Space-point) अर्थात् एक स्वतंत्र परमाणु को रहने के लिये आवश्यक अवकाश । ऐसे मर्यादित आकाश प्रदेश में अनंत पुद्‌गल परमाणु कैसे हो सकते हैं ? एक आकाश प्रदेश में केवल एक ही परमाणु रह सकता है तथापि उसी आकाश प्रदेश में अनंत परमाणुओं के समूह स्वरूप पुद्‌गल-स्कंध अर्थात् अनंत पुद्‌गल परमाणु भी रह सकते हैं ।

जैनदर्शन में प्राप्त भौतिकी का यही सिद्धांत आठों प्रकार के कर्म से मुक्त शरीररहित आत्मा पर भी लागू होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष में मुक्त आत्मा का स्थान है । ये मुक्त आत्माएँ अरूपी व अशरीरी हैं । उनमें सभी का स्वतंत्र अस्तित्व और जैन सिद्धांत अनुसार मुक्त होते समय अर्थात् निर्वाण के समय उनके शरीर की जो ऊँचाई होती है उस की दो तृतीयांश ऊँचाई मोक्ष में उसी आत्मा की होती है । तथापि जिस स्थान पर एक मुक्त आत्मा होती है उसी स्थान पर अन्य अनंत मुक्त आत्माएँ भी होती है । इसकी सरल समझ देते हुए जैन धर्मग्रंथों में उस के वृत्तिकार आचार्य भगवंत दीपक के प्रकाश का उदाहरण देते हैं । जैसे कि एक खंड में एक छोटा सा दीपक जलाया जाय तो संपूर्ण खंड में उसका प्रकाश फैल जाता है। यदि उसी खंड में ऐसे 20 - 25 या सेंकडों दीपक जलाया जाय तो खंड की दिवालों के ऊपर और खंड में सभी जगह सभी दीपक का प्रकाश होता है किन्तु किसी एक जगह केवल एक ही दीपक का प्रकाश हो ऐसा नहीं होता है ।

मध्यप्रदेश के प्रो. पी. एम. अग्रवाल के मतानुसार एक ही आकाश प्रदेश में अनंत परमाणुओं का अवस्थान व उसी प्रकार मोक्ष में समान आकाश प्रदेश में अनंत आत्माओं का अवस्थान बोस-आइन्स्टाइन स्टॅटिस्टिक्स द्वारा समझाया जा सकता है ।

डॉ. प्र. चु. वैद्य का किरणोत्सारी तारक के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र संबंधित अनुसंधान भी जैनदर्शन के पुद्‌गल परमाणु सिद्धांत का समर्थन करता है । उनके अनुसंधान अनुसार किरणोत्सारी तारे या सूर्य के गुरुत्वाकर्षण उतने ही द्रव्यमान व कदवाले सामान्य अर्थात् किरणोत्सर्ग नहीं करने वाले तारे या सूर्य से कम होता है । उसका गणित उन्होंने समीकरण द्वारा दिया है ।

जैनदर्शन अनुसार शक्ति गुण है और " गुणपर्यायवद् द्रव्यम् " (गुण व पर्याययुक्त हो वह द्रव्य कहलाता है।) (तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय 5, सूत्र - 37) अनुसार वह द्रव्य में रहता है । और जो पुद्‌गल मूर्त / रूपी द्रव्य है उसे द्रव्यमान (mass) अवश्य होता है । प्रकाश की किरण भी द्रव्य हैं, गुण नहीं । " किरणा गुणा न, दव्वम् ।" उसी द्रव्य में ही शक्ति स्वरूप गुण है । अतः किरणोत्सारी तारा या सूर्य, प्रकाश का उत्सर्जन करता है तब वस्तुतः उसमें से सूक्ष्म कण ही उत्सर्जित होते हैं ।इन सूक्ष्म कण का भी द्रव्यमान (mass) होता है और वे जिनमें से उत्सर्जित होते हैं उसका द्रव्यमान भी कम होता है और वे उनके गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में आये हुये पदार्थ पर आपात होते हैं और उसकी गति में या उस तारे या सूर्य की ओर के आकर्षण में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कमी होती है । हालाँकि, यह कमी प्रकाश के वेगमान (momentum = p=mv=mc) अनुसार बहुत ही कम होती है । ऐसी नगण्य कमी का गणित डॉ. प्र. चु. वैद्य ने हमें दिया है । यद्यपि आधुनिक विज्ञान में कहीं कहीं फोटॉन कणों का द्रव्यमान 3.0 X 10^{-43} बताया है तथापि आधुनिक भौतिकी फोटॉन को शून्य द्रव्यमान युक्त मानती है ।

आधुनिक भौतिकी ऐसा मानती है कि सूर्य आदि या उससे अधिक द्रव्यमान वाले ताराओं के ज्यादातर गुरुत्वाकर्षण के कारण उसके आसपास का आकाश संकुचित होता है । उसमें से प्रसारित होने वाले पदार्थ का मार्ग भी थोड़ासा वक्राकार बनता है । वस्तुतः जैन दार्शनिक मान्यता अनुसार आकाश एक अखंड द्रव्य है । वह अपौद्‌गलिक है अतः वह निष्क्रिय और निर्गुण है । हालाँकि नैयायिक दर्शनवाले शब्द को आकाश का गुण मानते हैं किन्तु जैनदर्शन शब्द को पूर्णतः पौद्‌गलिक मानता है और वह आधुनिक वैज्ञानिक उपकरण द्वारा भी सिद्ध हो सकता है । अतः जैन दार्शनिक मान्यता अनुसार निर्गुण व निष्क्रिय आकाश पर किसी भी पदार्थ के गुरुत्वाकर्षण का तनिक भी असर नहीं होता है किन्तु किसी भी पदार्थ के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में आनेवाले पौद्‌गलिक पदार्थों पर ही उसके गुरुत्वाकर्षण का असर होता है । यदि वही पदार्थ - तारा या सूर्य - किरणोत्सर्ग करता हो तो, वही किरणोत्सर्ग उसी तारा या सूर्य का गुरुत्वाकर्षण कम करता है । यही कमी प्रकाश / फोटॉन के स्वरूप में जिन शक्ति का उत्सर्जन तारा या सूर्य करता है, उसी शक्ति अर्थात् फोटॉन को भी द्रव्यमान (mass) होने का प्रमाण है ।

आइन्स्टाइन की जनरल थ्योरी ओफ रिलेटीविटी (General Theory of Relativity) के अनुसार सूर्य के गुरुत्वाकर्षण से तारे के किरण के वक्रीकरण (Solar deflection of Star light) द्वारा प्राप्त उसी तारे का स्थानांतर संपूर्ण खग्रास सूर्यग्रहण के दौरान नापा गया । अतएव फोटॉन को है ऐसा सिद्ध होता है क्योंकि जो पौद्‌गलिक है अर्थात् जिसके द्रव्यमान है उस पर ही गुरुत्वाकर्षण का असर होता है, यदि प्रकाश के कणों का द्रव्यमान शून्य होता तो किसी भी प्रकार के प्रबल गुरुत्वाकर्षण का उन पर कोई असर नहीं हो सकता । किन्तु ऊपर बताया उसी प्रकार G. T. R. में तारे की किरण पर सूर्य के प्रबल गुरुत्वाकर्षण की असर पायी जाती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतएव प्रकाश के कणों का द्रव्यमान शून्य नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है । हालाँकि यह मेरा अपना अनुसंधान है इसके साथ सब लोग सहमत हो ऐसा मैं नहीं कह सकता, किन्तु निकट के भविष्य में सभी विज्ञानी मेरे इस अनुसंधान से सहमत होंगे तो मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं होगा ।

यही है जैनदर्शन का अद्भुत परमाणु विज्ञान ।

If physics leads us today to a world view which essentially mystical, it returns, in a way, to its beginning, 2500 years ago...... Western science is finally overcoming this view and coming back to those of the early Greek and Eastern philosophies. This time, however, it is not only based on intuition, but also on experiments of great precision and sophistication, and on a rigorous and consistent mathematical formalism.

Fritjof Capra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4

जैनदर्शन और आइन्स्टाइन का सापेक्षतावाद

अनेकान्तवाद अर्थात् सापेक्षतावाद जैनदर्शन की महत्त्वपूर्ण भेंट है । किसी भी पदार्थ या प्रश्न का विभिन्न पहलू से या दृष्टिकोण से विचार करना, उसे भगवान श्री महावीरस्वामी ने अनेकान्तवाद कहा है ।

जैनदर्शन अनुसार इस ब्रह्मांड में अनंत पदार्थ हैं और उसमें प्रत्येक पदार्थ के अनंत पर्याय है । तथापि उन सभी पदार्थों का केवल छः द्रव्य में समावेश हो जाता है । ये छः द्रव्य शाश्वत / नित्य हैं तथापि वे पदार्थ पर्याय की दृष्टि से अनित्य भी हैं । इस प्रकार एक ही पदार्थ में परस्पर विरुद्ध ऐसे नित्यत्व व अनित्यत्व तथा अन्य भी अनेक धर्मों का कथन करना ही सापेक्षतावाद / अनेकान्तवाद है ।

श्रमण भगवान महावीरस्वामी का यह सापेक्षतावाद वस्तुतः वैचारिक है तथापि वह इस ब्रह्मांड की बहुत सी घटनाओं को समझाने में सफल होता है और उससे दृश्य विश्व के बहुत से प्रश्नों का समाधान हो सकता है ।

दूसरी ओर ई. स. 1905 में सुप्रसिद्ध विज्ञानी आल्बर्ट आइन्स्टाइन ने आधुनिक भौतिकी में प्रकाश के वेग के संदर्भ में विशिष्ट सापेक्षता सिद्धांत का आविष्कार किया और बाद में ई. स. 1915 में गुरुत्वाकर्षण के संदर्भ में सामान्य सापेक्षता सिद्धांत का आविष्कार किया । आइन्स्टाइन द्वारा स्थापित ये दोनों सिद्धांत आइन्स्टाइन की कल्पना व बुद्धि की पैदाइश है, किन्तु आइन्स्टाइन के इन सिद्धांतों को स्पष्ट रूप में न समझने वाले जैन तत्त्वचिंतक / विद्वान केवल शब्द के साम्य से श्रमण भगवान श्री महावीर दर्शित सापेक्षतावाद व आइन्स्टाइन दर्शित सापेक्षतावाद को एक ही मानते हैं । किन्तु दोनों में जमीन आसमान का अंतर है ।

आइन्स्टाइन के सापेक्षतावाद के ये दोनों सिद्धांत दो पूर्वधारणा पर आधारित है । पूर्वधारणा अर्थात् बिना किसी भी प्रकार के प्रमाण से स्वीकार की गई मान्यता ।

आइन्स्टाइन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धांत की प्रथम पूर्वधारणा यह है कि समग्र ब्रह्मांड में प्रकाश के वेग से ज्यादा वेग किसी भी पदार्थ का नहीं होता है, नहीं हो सकता है । हालाँकि, वर्तमान परिस्थिति में इस पूर्वधारणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अर्थ विभिन्न विज्ञानी विभिन्न रीति से करते हैं । दूसरी पूर्वधारणा यह है कि प्रकाश का वेग अचल (constant) है । उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता है अर्थात् प्रकाश का वेग 3,00,000 कि. मी./से. से ज्यादा भी नहीं हो सकता है और उससे कम भी नहीं हो सकता ।

आज आइन्स्टाइन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धांत व सामान्य सापेक्षता सिद्धांत के बारे में पुनर्विचारणा करने का समय आचूका है क्योंकि थोड़े समय पूर्व अमरिका में स्थित भारतीय विज्ञानी डॉ. इ. सी. जी. सुदर्शन ने गाणितिक रीति से प्रकाश से ज्यादा वेग वाले कण का अस्तित्व सिद्ध किया है और उसका नाम उन्होंने टेक्योन (Tachyon) रखा है । इतना ही नहीं अमरिका की प्रिन्स्टन युनिवर्सिटी के विज्ञानी डॉ लिजुन वांग के अंतिम अनुसंधान अनुसार प्रकाश का अपना वेग भी उसके असल 3,00,000 कि. मी./से से 300 गुना ज्यादा मालुम पडा है और अन्य एक विज्ञानी ने प्रकाश के वेग को कम करते हुए शून्य तक भी करके स्थिर किया गया है । इस प्रकार वर्तमान में आइन्स्टाइन की दोनों पूर्वधारणा गलत सिद्ध होने की तैयारी में हैं ।

जैनदर्शन के धर्मग्रंथ स्वरूप पंचमांग श्री भगवती सूत्र अर्थात् व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र नामक आगम में श्री महावीरस्वामी ने उनके प्रथम शिष्य गणधर श्री गौतमस्वामीजी द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में स्पष्टरूप से बताया है कि --

> परमाणुपोग्गले णं भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति, पच्चत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पुरत्थिमिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति, दाहिणिल्लाओ चरिमंताओ उत्तरिल्लं० जाव गच्छति, उत्तरिल्लाओ दाहिणिल्लं० जाव गच्छति, उवरिल्लाओ चरिमंताओ हेट्ठिल्लं चरिमंतं एग० जाव गच्छति, हेट्ठिल्लाओ चरिमंताओ उवरिल्लं चरिमंतं एगसमएणं गच्छति ? हंता गोतमा ! परमाणुपोग्गले णं लोगस्स पुरत्थिमिल्लाओ चरिमंताओ पच्चत्थिमिल्लं० तं चेव जाव उवरिरल्लं चरिमंतं गच्छति । (भगवतीसूत्र, शतक-16, उद्देशक-8)

परमाणु पुद्गल अर्थात् ऍटम एक ही समय में इस ब्रह्मांड अंतिम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निम्नस्तर से ऊपर के स्तर पर जा सकता है । जैनदर्शनानुसार समय काल का सूक्ष्मतम अंश है, और ऐसे असंख्य समय इक्कट्ठे होकर एक आवलिक बनती है, और ऐसी 5825.42 आवलिका इक्कट्ठी होकर एक सैकंड होती है । जैनदर्शन अनुसार ब्रह्मांड मर्यादित व स्थिर होने पर भी उसके ऊपर के स्तर से निम्न स्तर का अंतर इतना अधिक है कि इसे शायद गाणितिक अंक या समीकरण द्वारा बताया नहीं जा सकता है । अतः जैनदर्शन अनुसार भी आइन्स्टाइन की पहली पूर्वधारणा गलत सिद्ध होती है तथा दूसरी पूर्वधारणा भी जैनदर्शन अनुसार गलत सिद्ध होती है । अतः उसके आधार पर किया गया गणित भी गलत है ।

संक्षेप में, आइन्स्टाइन की दोनों पूर्वधारणा गलत होने की वजह से आइन्स्टाइन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धांत व सामान्य सापेक्षता सिद्धांत कुछेक मर्यादा तक ही अर्थात् दृश्य विश्व के लिये प्रकाश से कम गतिवाले पदार्थ के लिये लागू होते हैं किन्तु प्रकाश से ज्यादा गतिवाले पदार्थ के लिये उसका उपयोग नहीं हो सकता।

आइन्स्टाइन की अपनी पूर्वधारणा के अनुसार व उनके गणित के अनुसार -

1. जैसे-जैसे पदार्थ का वेग बढता जाता है वैसे-वैसे उस पदार्थ की लंबाई में कमी होती है । यदि पदार्थ का वेग प्रकाश के वेग के समान हो जाय तो उस पदार्थ की लंबाई शून्य हो जाती है ।

2. जैसे-जैसे पदार्थ का वेग बढता जाता है वैसे-वैसे उस पदार्थ का द्रव्यमान बढता जाता है । यदि पदार्थ का वेग प्रकाश के वेग के समान हो जाय तो उस पदार्थ का द्रव्यमान अनंत हो जाता है ।

3. जैसे-जैसे पदार्थ का वेग बढता जाता है वैसे-वैसे उस पदार्थ के लिये समय / काल की गति कम होती है । यदि पदार्थ का वेग प्रकाश के वेग के समान हो जाय तो उस पदार्थ के लिये समय स्थिर हो जाता है।

अतः इस गणित के आधार पर किसी भी पदार्थ का वेग प्रकाश से ज्यादा नहीं होता है । अतएव वर्तमानकालीन विज्ञानीयों को अनिवार्यतः मानना पडा कि प्रकाश से ज्यादा वेग वाले कणों का अस्तित्व होने पर भी उसका वेग कदापि प्रकाश के वेग से कम नहीं हो सकता है । उन्होंने प्रकाश के वेग को एक ऐसा बिन्दु मान लिया कि उससे होने वाले दो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभागों में दोनों तरफ आये हुये कण उसी बिन्दु की सीमा का उल्लंघन करके दूसरे विभाग में कदापि नहीं आ सकते हैं। अर्थात् प्रकाश से कम वेग वाले कण का वेग कभी भी प्रकाश से ज्यादा नहीं हो सकता और प्रकाश से ज्यादा वेग वाले कण का वेग कदापि प्रकाश के वेग से कम नहीं हो सकता है ।

किन्तु जैनदर्शन इस मान्यता का स्वीकार नहीं करता है । ऊपर बताया उस प्रकार कोई भी पदार्थ, जिसका वेग प्रकाश से ज्यादा है, वह अपना वेग कम करते हुये शून्य भी कर सकता है और वही पदार्थ जब पुनः गतिमान होता है तब उसका वेग बढते-बढते प्रकाश से भी हजारों गुना ज्यादा हो सकता है ।

संक्षेपमें, आइन्स्टाइन के विशिष्ट सापेक्षता सिद्धांत अनुसार पदार्थ का वेग जैसे-जैसे बढता है वैसे-वैसे उस पदार्थ की लंबाई में कमी होती है, द्रव्यमान बढता जाता है और समय / काल की गति कम होती है इत्यादि जैन तत्त्वज्ञान के परिप्रेक्ष्य में केवल काल्पनिक ही है वास्तविक नहीं है ।

इस प्रकार आइन्स्टाइन का विशिष्ट सापेक्षता सिद्धांत केवल दृश्य जगत की ही कुछेक घटना को समझा सकता है । जबकि भगवान महावीरस्वामी का सापेक्षता सिद्धांत दृश्य-अदृश्य जगत की सभी घटना को समझा सकता है क्योंकि जैन धर्म भी विज्ञान है इतना ही नहीं परम विज्ञान है । विज्ञान केवल भौतिक पदार्थों पर ही लागू होता है, समझा सकता है जबकि जैन धर्म चेतना-चैतन्य, आत्मा को भी स्पर्शता है, समझा सकता है जिनको स्पर्श करना या समझाना प्रायः असंभव लगता है । विज्ञान केवल भौतिक पदार्थ को ही बदल सकता है, नया स्वरूप दे सकता है । जबकि जैन धर्म चेतना - आत्मा जो देखी नहीं जा सकती है, स्पर्श भी नहीं किया जा सकता उसको भी बदल सकता है । अतएव जैन धर्म परम विज्ञान (Supreme science) है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

5

जैनदर्शन और अपना शरीर

मनुष्य जन्म बहुत ही दुर्लभ है, और मनुष्य जन्म के बिना कभी मोक्ष प्राप्ति नहीं हो सकती है । संसार में आत्मा जब तक मोक्षप्राप्ति नहीं करता है तब तक वह शरीरधारी ही होता है । बिना शरीर वह धर्म आराधना नहीं कर सकता है । अतएव शास्त्रकारों ने बताया है कि शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् अतः अपने इस शरीर के बारे में जानना आवश्यक है ।

जैन धर्मशास्त्रों के अनुसार शरीर के पाँच प्रकार है : 1. औदारिक शरीर, 2. वैक्रिय शरीर, 3. आहारक शरीर, 4. तैजस् शरीर, 5. कार्मण शरीर । प्रत्येक जीव के कम से कम तीन शरीर होते हैं । क्वचित् विशिष्ट पुरुषों को एक साथ चार शरीर भी हो सकते हैं । किन्तु एक साथ पाँच शरीर किसी भी जीव को कभी भी नहीं होते है । सामान्यतया अपनी भौतिक दुनिया में जीव को अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति इत्यादि जिनको केवल स्पर्श रूप एक ही इन्द्रिय है वे और उनके अलावा हिलते-चलते क्षुद्र जीव-जंतुओं जिनको जैन जीव विज्ञान के अनुसार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय वर्ग में रखे जाते हैं वे, पानी में रहनेवाले मछली इत्यादि जलचर जीव, गाय, घोडा, इत्यादि पशु, साँप, छिपकली इत्यादि और चिडियाँ, कौआ, तोता इत्यादि पक्षी जिन्हें पंचेन्द्रिय कहे जाते हैं उन सबको केवल औदारिक, तैजस् व कार्मण मिलाकर तीन शरीर ही होते हैं । जबकि देव और नारकी को वैक्रिय, तैजस् व कार्मण मिलाकर तीन शरीर होते हैं । वे अपने वैक्रिय शरीर को अपनी इच्छानुसार विविध स्वरूप-आकार में रूपांतरित कर सकते हैं । आधुनिक युग के विज्ञानीयों की भाषा में उसे अंग्रेजी में ऐच्छिक शरीर (Desire body) कहा जाता है । जबकि समग्र सृष्टि में एक मनुष्य ही ऐसा है कि जिनको अपनी स्थूल आँखों से दिखायी देनेवाला हाड-मांस-चाम का औदारिक शरीर तो है ही किन्तु वह यदि विशिष्ट क्रिया-तप इत्यादि द्वारा वैक्रिय शरीर या विशिष्ट ज्ञान द्वारा आहारक शरीर भी बना सकता है । तथापि वह एक साथ वैक्रिय व आहारक दोनों शरीर नहीं बना सकता है ।

इन पाँच प्रकार के शरीर में से जिनका यहाँ महत्त्व प्रस्थापित करना है वे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं तैजस् शरीर व कार्मण शरीर । ये दोनों प्रकार के शरीर समग्र ब्रह्मांड में सभी संसारी जीवों को होते हैं । हाँ, जो जीव समग्र कर्म के सभी बंधन को तोडकर मोक्ष में गया है अर्थात् अष्टकर्म से मुक्त हो गया है, उसको इन पाँच शरीरों में से एक भी शरीर नहीं होता है । अतः उसे अशरीरी कहा जाता है । तैजस्-कार्मण शरीर को अंग्रेजी में Vital body कहा जाता है ।

औदारिक शरीर या स्थूल भौतिक शरीर के बारे में आधुनिक विज्ञान ने विशिष्ट अनुसंधान करके बहुतसी जानकारी उपलब्ध करायी है किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से उसका कोई मूल्य नहीं है । तैजस् शरीर जिसे सूक्ष्म शरीर भी कहा जाता है जो आहार का पाचन करके स्थूल शरीर के घटक द्रव्य खून, चरबी, माँस, अस्थि, मज्जा, इत्यादि बनाता है, वह और अपने स्थूल व सूक्ष्म शरीर के स्वरूप आदि जिनके आधार पर तय होते हैं, वही कार्मण शरीर, जिसे अन्य लोग कारण शरीर भी कहते हैं, दोनों बहुत ही महत्त्वपूर्ण है ।

देवताओं के चित्र में, उनके मस्तक के पीछे बताया गया भामंडल, उनकी दिव्यता का प्रतीक है । वस्तुतः वह उनके सूक्ष्म शरीर तैजस् शरीर की शुद्धि का प्रभाव है । अन्य जीवों में और मनुष्य में भी ऐसा घिरावक्षेत्र (परिमंडल) होता है, जिसे आभामंडल (aura) कहा जाता है । वस्तुतः यह आभामंडल जैविक विद्युद्चुंबकीयक्षेत्र (bio-electromagnetic field) ही है । जैसे प्रत्येक चुंबक का अपना चुंबकीय क्षेत्र होता है वैसे ही प्रत्येक जीव का अपना प्रभाव क्षेत्र होता है । मनुष्य के इस आभामंडल का आधार सूक्ष्म शरीर तैजस् शरीर की शुद्धि पर निर्भर करता है और उसका आधार कार्मण शरीर द्वारा ग्रहण किये गये पुद्गल परमाणु व उसके वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पर है । यद्यपि शुभ या अशुभ पुद्गल परमाणु के ग्रहण का आधार अपनी मनःस्थिति अर्थात् मन द्वारा किये गये शुभ या अशुभ विचार पर है । अतः उनके परिणाम स्वरूप आभामंडल की तीव्रता व शुद्धि-अशुद्धि का आधार मन या विचार पर है । इस आभामंडल को कुछेक लोग शक्तिकवच भी कहते हैं और यह मन जिसको कुछ लोग छठ्ठा इन्द्रिय (sixth sense) कहते हैं वह भी सूक्ष्म परमाणुसमूह एकम से बना है ।

श्री अशोक कुमार दत्त इस आभामंडल को देख सकते हैं । वे जैन नहीं हैं लेकिन उनका अनुभव जैन दार्शनिक मान्यताओं का समर्थन करता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके इस प्रकार के अनुभव तथा ऐसे ही अन्य लोगों को होने वाले अनुभव अनुसंधान का एक नया क्षेत्र खोल देते हैं ।

उनका एक विधान जैन कर्मवाद (Jain Karma Philosophy) को आश्चर्यजनक रूप में प्रतिबिंबित करता है । वे कहते हैं कि जो शक्तिकण इस शक्तिकवच के घिरे में आ जाते हैं उसे सूक्ष्म शरीर भोजन के रूप में ग्रहण कर लेता है ।

स्थूल दृष्टि से जैन दार्शनिकों ने तीन प्रकार का आहार बताया है : 1. कवलाहार या प्रक्षेपाहार, 2. लोमाहार, 3. ओजाहार । 1. कवल के रूप में पकाया हुआ धान्य आदि मुख द्वारा खाना *कवलाहार* या मुख द्वारा आहार लेने की संभावना न हो तब छिद्र करके प्रवाही देना या इंजेक्शन द्वारा सीधे ही खून में शक्तिदायक पदार्थ या औषध आदि देना वह *प्रक्षेपाहार* 2. वातावरण में स्थित आहार पानी के सूक्ष्म अणु को रोम द्वारा ग्रहण करना *लोमाहार* और 3. गर्भस्थ शिशु या जीव उत्पत्ति के प्रथम क्षण में माता-पिता के शुक्र-शोणित आहार करे वह *ओजाहार* ।

सूक्ष्मदृष्टि से जैन कर्म सिद्धांतानुसार यह आत्मा / जीव जितने आकाश प्रदेश में स्थित है उससे अनन्तर आकाश प्रदेश में स्थित कार्मण वर्गणा के पुद्गल स्कंधों को ग्रहण करता है और आत्मा उसे अपने कार्मण शरीर में मिला देता है । इसके बाद वह आत्मा के साथ कथंचित् अभिन्न स्वरूप प्राप्त कर लेता है ।

यही शक्तिकवच अर्थात् आभामंडल के बारे में श्री दत्त कहते हैं कि जैसे-जैसे शक्तिकवच का घिरावा बढता जाता है वैसे-वैसे शक्तिकणों को ग्रहण करने की और उनको उत्सर्जित करने की क्षमता भी ज्यादा बढती है । इसके बारे में ऐसा कहा जाय कि जैसे-जैसे आत्मा की उन्नति होती है वैसे-वैसे उनका शक्तिकवच अर्थात् आभामंडल ज्यादा ज्यादा बड़ा, शुद्ध व स्पष्ट होता जाता है । अतएव दैवी तत्त्वों अर्थात् देवी-देवता या तीर्थंकर परमात्मा का आभामंडल शुद्ध, स्पष्ट एवं आँखों से देखा जा सके ऐसा होता है । जड़ पदार्थों में भी आभामंडल होता है किन्तु सजीव पदार्थ की भाँति वह स्थिर नहीं होता या आध्यात्मिक विकास अनुसार उसका विकास नहीं होता है । वह तो प्रतिदिन क्षीण व निस्तेज होता रहता है । देवों में भी उनका आयुष्य छः माह शेष रहने पर, उनका आभामंडल निस्तेज हो जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । उनकी फूल की माला मुरझा जाती है और शरीर मलिन होने लगता है, किन्तु जो देव एकावतारी अर्थात् तत्पश्चात् भव में ही मनुष्य होकर मोक्ष में जाने वाले हैं वे इस नियम में नहीं आते हैं । उनका आभामंडल प्रतिदिन ज्यादा तेजस्वी बनता है, फूल की माला मुरझा नहीं पाती । तदुपरांत इस आभामंडल अर्थात् जैविक विद्युद्‌चुबंकीय क्षेत्र की तीव्रता का आधार मन की शक्ति या संकल्प शक्ति पर भी है । जैसे-जैसे जीव की संकल्प शक्ति तीव्र बनती है वैसे-वैसे उनका आभामंडल बड़ा व शक्तिशाली बनता है । अतः मनुष्य को अपनी मानसिक शक्ति संकल्पशक्ति को निरंतर शुभ विचार, मंत्रजाप और इष्ट देव के स्मरण द्वारा तीव्र बना सकता है । तीर्थंकर परमात्मा के अद्‌भुत आभामंडल के बारे में विशेष विवेचन आगे के प्रकरण में दिया जायेगा ।

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ,
जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ ।

आचारांग सूत्र

JĒ ĒGAṂ JĀṆAI SĒ SAVVAṂ JĀṆAI.
JĒ SAVVAṂ JĀṆAI SĒ ĒGAṂ JĀṆAI
"ONE, by knowing which all is known.
All, by knowing which one is known"

Ācārāṅga sūtra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6

तीर्थंकर परमात्मा के सुवर्णकमल विहार का रहस्य

केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा पृथ्वी पर कदम रखने के बजाय देवकृत सुवर्ण कमल पर ही कदम स्थापन करने का क्या कारण है ? इसके बारे में कुछ लोग कहते हैं कि तीर्थंकर परमात्मा तो संसारत्यागी हैं, वे तो कंचन-कामिनी के त्यागी हैं, अपरिग्रही हैं, अतः उनको बैठने के लिये सुवर्ण के सिंहासन व विहार करने के लिये सुवर्ण कमल की रचना क्यों ?

इसके बारे में कोई स्पष्ट कारण व उत्तर जैन धर्म ग्रंथों में प्राप्त नहीं है । किन्तु कुछ आधुनिक चिंतक विद्वान व जैन मुनि इस प्रश्न के उत्तर में ऐसा कहते हैं कि तीर्थंकर परमात्मा को केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद उनके शरीर में से निरंतर विपुल मात्रा में ऊर्जा उत्सर्जित होती रहती है । इस ऊर्जा को धारण करने की क्षमता पृथ्वी में नहीं है । केवल सुवर्ण ही ऐसा पदार्थ है कि जो इस ऊर्जा को धारण कर सकता है । अतएव प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति होने के बाद तुरंत देव सुवर्ण कमल की रचना करते हैं और प्रभु उन पर कदम स्थापन करके विहार करते हैं या उस पर बिराजमान होते हैं या समवसरण में सुवर्ण के सिंहासन पर बिराजमान होकर उपदेश देते हैं और उस समय भी प्रभु के चरण तो सुवर्ण कमल पर ही स्थापित होते हैं ।

इस उत्तर के प्रतिप्रश्न के रूप में हमारे परम पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विजय सूर्योदयसूरिजी महाराज कहते हैं कि यह बात उचित नहीं है और इस बात को शास्त्र का कोई आधार भी नहीं है और सुवर्ण भी पृथ्वी में उत्पन्न होता है अतः वह भी पृथ्वीकाय ही है । यदि पृथ्वी में केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा की ऊर्जा के विपुल प्रमाण को झेलने की क्षमता नहीं है तो सुवर्ण में वह क्षमता कैसे आ सकती है ? अर्थात् नहीं आ सकती । अतः यही सुवर्ण कमल की रचना का रहस्य कुछ ओर ही है ।

इसके बारे में वैज्ञानिक सिद्धांत के आधार पर विचार करने पर इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया जाय । वर्तमान में विज्ञान में यह सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक सजीव पदार्थ में से एक प्रकार की शक्ति ऊर्जा निरंतर उत्सर्जित होती रहती है इस शक्ति को विज्ञानी जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(Bio-electro- magnetic-energy) कहते हैं । यह शक्ति नहीं देखी जा सकती है किन्तु उसका अनुभव हो सकता है । क्वचित् अतीन्द्रिय शक्तिवान् मनुष्य इसे देख सकते हैं । जहाँ विद्युत्शक्ति होती है वहाँ चुंबकत्व अवश्य होता है । ये शक्तियाँ परस्पर एक दूसरे के साथ संयोजित ही है ऐसा प्रतिपादन ई. स. 1833 में माइकल फेराडे ने किया ही है और जहाँ विद्युद्-चुंबकीय शक्ति है वहाँ विद्युद्-चुंबकीय क्षेत्र भी होता है ।

भले ही हम जैविक विद्युद्-चुंबकीय क्षेत्र को नहीं देख सकते हैं, किन्तु आज अत्याधुनिक वैज्ञानिक साधन द्वारा किर्लियन फोटोग्राफी से इसके रंगीन फोटोग्राफ्स लिये जा सकते हैं । इतना ही नहीं, उनके रंग के आधार पर और उनकी अपूर्णता के परीक्षण द्वारा रोग का निदान भी किया जाता है।

प्राचीन काल के महापुरुषों ने यही जैविक विद्युद्चुंबकीयक्षेत्र को आभामंडल (aura) नाम दिया है ।

मनुष्य के आभामंडल के बारे में निष्णातों का अभिप्राय है कि कोई भी रोग शरीर में प्रवेश करने के पूर्व तीन माह पहले आभामंडल में उसी रोग का असर पाया जाता है । अतः किर्लियन फोटोग्राफी द्वारा लिये गये आभामंडल के फोटोग्राफ्स के परीक्षण द्वारा रोग को जानकर उसके उपचार करके रोग को शरीर में प्रवेश करता रोका जा सकता है, और इसी प्रकार मनुष्य निरोगी हो सकता है । हालाँकि, उस समय भी रोग सूक्ष्म रूप में तो शरीर में प्रवेश पा चुका होता है । केवल स्थूल रूप में उसका आविर्भाव नहीं पाया जाता है ।

संक्षेप में, जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति विज्ञान सिद्ध वास्तविकता है उसमें कोई शंका नहीं है । इस शक्ति का उत्सर्जन प्रत्येक सजीव पदार्थ में से होता है किन्तु उसके प्रकार व प्रमाण का आधार उसी पदार्थ की शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उत्क्रान्ति पर है । साथ-साथ उसी सजीव पदार्थ की आत्मा को लगे हुये शुभ-अशुभ कर्म व आत्मा की शक्ति को आवृत्त करने वाले कर्म कितनी मात्रा में दूर हुये है ? उस पर भी उसका आधार है । ये सभी परिबल केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा में सब से ज्यादा होते हैं । अतः उनकी जैविक विद्युद्-चुंबकीय शक्ति उत्तमोत्तम प्रकार की व उच्चतम मात्रा मे होती है ।

जैन दार्शनिक परंपरा अनुसार किसी भी जीव को मन, वचन व शरीर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन तीन में से कम से कम शरीर तो सब को होता ही है, चाहे वह जीव अत्यंत निम्नतम कक्षा अर्थात् प्राथमिक अवस्था मे क्यों न हो ?

जैनदर्शन अनुसार मन केवल हाथी, गाय, घोडे आदि पशु व चिड़िया, तोता, मैना, कोयल आदि पक्षी, मनुष्य, देव व नारकी को ही होता है। जबकि एकेन्द्रिय माने जाते पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति व बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय व मनरहित पशु, पक्षी, जलचर जीव और असंज्ञी (संमूर्च्छिम) मनुष्य को पौद्गलिक मन नहीं होता है। अतः उन्हीं जीवों को मन द्वारा होने वाला शुभ या अशुभ कर्म का बंध भी नहीं है। अतः उसी कारण से होने वाला जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति/क्षेत्र में परिवर्तन भी नहीं है किन्तु केवल एक शरीर विद्यमान होने से उसके द्वारा होने वाला शुभ या अशुभ कर्मबंध होने से जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति/क्षेत्र में परिवर्तन होता है। संसारी अर्थात् कर्म सहित जीव के लिये यही परिबल कभी भी शून्य नहीं होता है।

उसी प्रकार संसारी जीव चाहे ऐसी प्राथमिक अवस्था में हो तो भी उसकी आध्यात्मिक शक्ति कभी भी शून्य नहीं होती है।

निगोद अर्थात् आलू, कंद जैसे साधारण वनस्पतिकाय के जीव में भी चार अघाती कर्म संबंधित और उसमें भी खास तौर पर नामकर्म व वेदनीयकर्म संबंधित शुभकर्म कभी भी शून्य नहीं होता है। ठीक इससे उलटा इन चार कर्म संबंधित चाहे इतने अशुभ कर्म इकट्ठे होने पर भी आत्मा की अनंत शक्ति को पूर्णतया आवृत्त करनेमें समर्थ नहीं हो पाते। उसी प्रकार आत्मा की अनंत शक्ति का घात करने वाले घातीकर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय व अंतराय) का चाहे इतना समूह इकट्ठा होने पर भी आत्मा की अनंत शक्ति को पूर्णतया आवृत्त नहीं कर सकते हैं।

इस प्रकार समग्र सजीव सृष्टि में सबसे प्राथमिक कक्षा के माने जाते जीव में भी जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति कभी भी शून्य नहीं होती है।

केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा में --

1. शारीरिक शक्ति सबसे ज्यादा होती है क्योंकि उनके शरीर में प्रथम वज्रऋषभनाराच संघनन (हड्डियाँ की संरचना का एक प्रकार) होता है। जिसमें सबसे ज्यादा उपसर्ग-परिषह आदि सहन करने की ताकत होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालचक्र उन पर छोडने पर भी उनकी मृत्यु या शरीर का नाश नहीं होता है ।

2. शारीरिक शक्ति सबसे ज्यादा होने की वजह से मनोबल/मानसिक शक्ति भी सबसे ज्यादा होती है क्योंकि शरीर मजबूत हो तो ही मन मजबूत रह सकता है । अतएव प्रथम संघनन वाले मनुष्य को देव भी ध्यान में से विचलित नहीं कर सकते हैं ।

3. मन, वचन, काया की एकाग्रता ही ध्यान है । अतः जिनका शरीर व मन मजबूत होता है उसका ध्यान भी उत्कृष्ट / श्रेष्ठ होता है । अतएव आध्यात्मिक परिस्थिति भी उत्तमोत्तम होती है ।

4. जिनको शुभ कर्म का ज्यादा उदय होता है उनकी जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति भी ज्यादा होती है । तीर्थंकर परमात्मा ने पूर्व भव में शुभकार्य व शुभभाव द्वारा सब से विशिष्ट पुण्य युक्त तीर्थंकर नामकर्म का बंध किया है । उसके उदय व उसके साथ संबंध रखनेवाले अन्य शुभकर्म भी उदय में आते हैं । अतः उनकी जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति भी सबसे ज्यादा होती है ।

5. तीर्थंकर होने की वजह से प्रायः उनको किसी भी प्रकार के अशुभ कर्म का उदय नहीं होता है । अतः उनसे संबंधित जैविक विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति में किसी भी प्रकार का अवरोध नहीं पाया जाता है ।

6. आत्मा के गुणों को आवृत्त करने वाले, आत्मा की अनंत शक्ति को प्रगट करने में बाधक मुख्य चार कर्म हैं : (1) ज्ञानावरणीय, (2) दर्शनावरणीय, (3) मोहनीय और (4) अंतराय, जिसे घातीकर्म कहते है । ये कर्म केवलज्ञानी में पूर्णतया दूर हो जाते हैं । अतः उनकी आत्मा की शक्ति प्रकट हो जाती है । उसका वे स्वयं व अन्य जीव प्रगटरूप से अनुभव करते हैं ।

ऊपर बताया उसी प्रकार छः प्रकार से केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा की शक्ति उत्तमोत्तम प्रकार की व सबसे ज्यादा प्रगट होती है । यही शक्ति सूक्ष्म जैविक विद्युद्‌चुंबकीय ऊर्जा के स्वरूप में होती है । इस ऊर्जा को पृथ्वी सहन न कर सकने से सुवर्ण कमल पर प्रभु पाद स्थापन करके विहार करते हैं ऐसा नहीं है किन्तु इस शक्ति से वातावरण ज्यादा शक्तिशाली बन जाता है । इस शक्ति को मनुष्य या अन्य प्राणी झेलने में समर्थ न होने से या झेलने पर उसको लाभ होने की बजाय नुकसान होने की संभावना होने से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

या प्रभु की उच्चतम शक्ति का लोगों को ज्यादा लाभ मिले उसी कारण से तीर्थंकर परमात्मा की उच्च जैविक विद्युद्चुंबकीय ऊर्जा को पृथ्वी में उतारने लिये देव सुवर्ण कमल की रचना करते हैं और प्रभु उस पर पैर स्थापन करके विहार करते हैं ।

सामान्य तौर से हम देखते हैं कि गगनचुंबी मकान पर तांबे की तार लगायी जाती है जिसकी दूसरी छोर जमीन में गाडी होती है । उसका कारण यह है कि वर्षा ऋतु में वातावरण में भारी दबावयुक्त बिजली को उसी तार द्वारा जमीन में उतारी जाती है । इससे आसपास में अन्यत्र कहीं भी बिजली पडती नहीं है । बस, इसी सिद्धांत पर देव प्रभु के लिये सुवर्ण कमल की रचना करते हैं ऐसा मेरा अपना मंतव्य है क्योंकि सुवर्ण बिजली के लिये अत्यंत सूक्ष्मग्राही (sensitive) पदार्थ है और तांबे से भी वह अतिसुवाहक (most conductive) है । अतः सुवर्ण कमल द्वारा प्रभु की यही शक्ति जमीन में उतर जाती है जिसके प्रभाव से प्रभु जहाँ भी विहार करते हैं वहाँ प्रभु के शरीर से निश्चित योजन के विस्तार में तथा प्रभु विहार करके अन्यत्र जाने के बाद भी उस स्थान में अर्थात् प्रभु ने जहाँ भी विहार किया हो वहाँ छः महिने तक किसी भी प्रकार के रोग, दुष्काल, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मच्छर, मक्खी, पतंग, तीड इत्यादि क्षुद्र जंतुओं के उपद्रव या ऐसी कुदरती आपत्तियाँ नहीं आती है । इतना ही नहीं, उस क्षेत्र में स्थित मनुष्य व प्राणीओं की अशुभ वृत्तियाँ भी दूर हो जाती है ।

अतएव आज से 2500 वर्ष पूर्व की श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी की जो विहारभूमि थी वह मगध अर्थात् आज का बिहार व उनकी कल्याणक भूमियाँ, खास तौर से केवलज्ञान कल्याणक की भूमि ऋजुवालिका नदी का तट व निर्वाण कल्याणक की भूमि - पावापुरी का वातावरण आज भी पवित्र जीवों को अलौकिक दिव्य अनुभूति कराता है ।

इस प्रकार प्रभु निरंतर समग्र सृष्टि पर उपकार करते रहते हैं ।

यह है प्रभु ने पूर्व भव में भावित " *सवि जीव करुं शासनरसी* " की उत्कृष्ट भावना का उत्कृष्ट परिणाम ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

7

जैनदर्शन में ध्वनि का स्वरूप

प्राचीन जैन दार्शनिक साहित्य व तंत्रविज्ञान ध्वनि को कण स्वरूप में ही स्वीकार करते हैं, इतना ही नहीं अपि तु उनके रंग भी उन्होंने बताये हैं। उसके साथ पश्चिम के अर्वाचीन साहित्य में भी पश्चिम की दो तीन व्यक्तियाँ ने ध्वनि के वर्ण/रंग देखे हैं ऐसे संदर्भ प्राप्त होते हैं । उसी प्रका श्री अशोक कुमार दत्त को भी इस प्रकार की प्राकृतिक देन है । वे आज भी ध्वनि के रंग को प्रत्यक्ष देख सकते हैं ।

जैनदर्शन ध्वनि को पुद्गल परमाणुसमूह से निष्पन्न मानता है, अत पुद्गल परमाणु के प्रत्येक गुण सूक्ष्म स्वरूप में ध्वनि में भी होते हैं । तत्त्वा सूत्र जैनियों के दिगंबर व श्वेताम्बर सभी को मान्य है, उसमें स्पष्ट रूप पुद्गल द्रव्य व उसके सूक्ष्मतम, अविभाज्य अंश स्वरूप परमाणु में वर्ण गंध, रस और स्पर्श होने का निर्देश किया गया है । अतः ध्वनि का भी व जैसे किसी अतीन्द्रिय ज्ञानी पुरुष देख सकते हैं वैसे अन्य किसी को उसके रस या गंध का भी अनुभव हो सकता है । हालाँकि, ध्वनि के स्पर्श क अनुभव तो सभी को होता ही है और टेप रेकॉर्डर, ग्रामोफोन की रेकॉ इत्यादि ध्वनि के स्पर्श से ही तैयार होते हैं । बहुत तीव्र ध्वनि के स्पर्श क भी हम सब को स्पष्ट रूप से अनुभव होता है । उसके बारे में ज्यादा कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है ।

जैन प्राचीन परंपरा में कुछ विशिष्ट तपस्वियों को तप के प्रभाव विशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त होने का निर्देश मिलता है । ऐसी शक्तियों को जै साहित्य में लब्धि कहा जाता है । श्री सिद्धचक्रमहापूजन नामक विधि विधा विषयक ग्रंथ में ऐली भिन्न-भिन्न 48 विशिष्ट लब्धियों के नाम पाये जाते हैं उसमें संभिन्नस्त्रोतस् नामक एक विशिष्ट है । यह लब्धि जिसको प्राप्त होत है, वह अपनी किसी भी एक इन्द्रिय द्वारा उससे भिन्न सबी चारों इन्द्रि द्वारा प्राप्त होने वाला ज्ञान प्राप्त कर सकता है । अर्थात् केवल स्पर्शनेन्द्रि से वह देख भी सकता है, सुगंध या दुर्गंध का अनुभव भी कर सकता है शब्द भी सुन सकता है, और स्वाद भी ले सकता है । हालांकि आज युग में ऐसी विशिष्ट लब्धि की प्राप्ति होना असंभव लगता है । अतः कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को ऐसी बात में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती है । किन्तु उस कारण से ऐसी शक्तियाँ हो सकती नहीं है, ऐसा विधान करना उचित नहीं है ।

श्री अशोक कुमार दत्त को प्राप्त ध्वनि के वर्ण को प्रत्यक्ष करने की शक्ति भी ऐसी ही विशिष्ट अज्ञात लब्धि हो सकती है । श्री दत्त की यही विशिष्ट शक्ति जैन कर्मवाद के अनुसार मतिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हुई हो क्यों कि इसी कर्म से पाँचों इन्द्रिय व छठ्ठे मन द्वारा प्राप्त ज्ञान का आवरण होता है । अर्थात् यही कर्म इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान में बाधक होता है । जब इसी कर्म का आवरण आत्मा के ऊपर से दूर होता है तब सहजता से ही इन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान होता है ।

श्री दत्त को हुए संस्कृत वर्णमाला संबंधित रंग का अनुभव और प्राचीन तंत्र विज्ञान के ग्रंथों में प्राप्त संस्कृत अक्षर के रंग में बहुत कुछ स्थान पर भिन्नता दिखाई पड़ती है । साथ-साथ तंत्र विज्ञान के ग्रंथों में भी परस्पर अक्षरों के वर्ण में भिन्नता दिखाई पड़ती है । तथापि यह संदर्भ इतना तो सिद्ध करता ही है कि प्राचीन काल के ऋषि-मुनि व विशिष्ट आराधक / तांत्रिकों को ध्वनि के रंग के बारे में अनुभव होता था ।

ब्रह्मांड में सभी जगह भाषा अर्थात् ध्वनि की उत्पत्ति व प्रसार किस तरह होता है उसको अच्छी तरह समझ लेने की आवश्यकता है । इसके बारे में आचारांग नामक पवित्र जैन आगम के द्वितीय श्रुतस्कंध / खंड के चौथे भाषाजात नामक प्रकरण में बताया है कि भाषा के चार प्रकार हैं ।

1. उत्पत्तिजात : आगे बतायी हुई वर्गणाओं में से भाषा वर्गणा में जिनका समावेश होता है वैसे परमाणु-समूह को जीव शरीर के द्वारा ग्रहण करता है और भाषा के रूप में परिणत करके पुनः बाहर निकालता है उसी परमाणुसमूह को *"उत्पत्तिजात"* शब्द कहा जाता है ।

2. पर्यवजात : उपर्युक्त पद्धति से बाहर निकले हुये शब्द के परमाणुसमूह द्वारा उसके आसपास के विश्रेणिगत अर्थात् पंक्तिबद्ध न हो ऐसे भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह को टकराकर उसी परमाणुसमूह भाषा के रूप में परिणत करते हैं । इस नये परिणत हुए शब्द को *पर्यवजात* शब्द कहा जाता है ।

3. अन्तरजात : प्रथम प्रकार से परिणत हुये शब्द के परमाणुसमूह जब समश्रेणिगत अर्थात् पंक्तिबद्ध आये हुये भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टकराकर शब्द में परिणत होकर उसमें ही संमिलित हो जाते हैं तब उसी शब्द को *अन्तरजात* शब्द कहा जाता है ।

4. ग्रहणजात : बाद में जिन-जिन भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह भाषा (शब्द) में परिणत हुये हैं चाहे वे समश्रेणिगत भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह हों या विश्रेणिगत भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह हों, उसमें से कुछेक परमाणुसमूह अपने कान के छिद्र में प्रवेश करते हैं जिनकी असर मस्तिष्क के श्रुति केन्द्र पर होती है, उसे *ग्रहणजात* शब्द कहा जाता है ।

ये परमाणुसमूह द्रव्य से अनंत प्रदेशात्मक अर्थात् अनंत परमाणु से युक्त होते हैं । क्षेत्र से असंख्यात प्रदेशात्मक अर्थात् असंख्यात आकाश प्रदेश में रहने वाले होते हैं । काल से असंख्यात समय की स्थिति वाले होते हैं और भाव से भिन्न भिन्न प्रकार के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से युक्त होते हैं ।

इसके अलावा बिना ग्रहण किये गये भाषा रूप में परिणत परमाणुसमूह पुनः विसर्जित होकर भाषा वर्गणा के मूल परमाणुसमूह में या अन्य प्रकार के परमाणुसमूह में रूपांतरित हो जाते हैं ।

ध्वनि की शक्ति का आधार आधुनिक विज्ञान के अनुसार उनकी कंपसंख्या-आवृत्ति पर है । यदि कंपसंख्या ज्यादा हो तो उसमें ज्यादा शक्ति होती है । यदि ध्वनि की शक्ति का संगीत के रूप में व्यवस्थित उपयोग किया जाय तो वह बहुत उपकारक सिद्ध हो सकती है । पुद्गल परमाणु में अचिन्त्य शक्ति है ऐसा स्वीकार तो आधुनिक विज्ञान भी करता है । अंग्रेजी दैनिक द टाइम्स ऑफ इन्डिया के 3 सप्टे., 1995, रविवार की पूर्ति में संगीत के बारे में एक आलेख आया था । उसमें स्पष्ट रूप से बताया गया है कि वातावरण / हवा संगीत के सुरों से शक्तिशाली बनता है । (Air is charged with musical ions) हालाँकि उसी लेख में लेखक महोदय ने पाश्चात्य संगीत के पोप संगीत या डिस्को संगीत का वर्णन किया है तथापि उसमें बताया है कि उसी संगीत के दौरान किसी को वातावरण में भिन्न-भिन्न प्रकार के रंगीन आकार नृत्य करते हुए दिखाई पड़ते थे । अर्थात् उन लोगों को ध्वनि के वर्ण का साक्षात्कार हुआ था ।

संगीत की तरह मंत्र विज्ञान में भी ध्वनि का विशिष्ट प्रयोग होता है ।

मंत्र अर्थात् किसी निश्चित कार्य के लिये किसी देव या देवी से अधिष्ठित किसी महापुरुष द्वारा विशिष्ट शब्दों या अक्षरों के संयोजन द्वारा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिपि बद्ध किया गया ध्वनि का स्वरूप । प्राचीन काल के महापुरुषों ने ऐसे विशिष्ट मंत्रों के निश्चित अर्थ अर्थात् विषयों को अपनी अतीन्द्रिय ज्ञानदृष्टि से देखे हैं और अतएव शब्द/मंत्र के ऐसे विशिष्ट रंगों को देखने वाले श्री अशोक कुमार दत्त अपने प्राचीन ऋषि-मुनिओं के लिये " *मंत्रार्थदृष्टा* " शब्द का प्रयोग करते हैं ।

मंत्रोच्चारण के रहस्य बताते हुए श्री अशोक कुमार दत्त अपने अनुभव का वर्णन करते हुए कहते हैं कि : *"मंत्रोच्चारण में व भगवद् नाम के उच्चारण करते समय भूरे व सफेद रंग कण समूह देखे जाते हैं और उससे प्राणीओं का शरीर पुष्ट होता है । उसके साथ-साथ मंत्रोच्चारण से सूक्ष्म शरीर प्रकाशपुंज की चमक व तेजस्विता बढ जाती है । अतएव भगवद्नाम जप व मंत्रोच्चारण का विधान पूर्णतः वैज्ञानिक है उसका मुझे भान हुआ ।"*

लेफ. कर्नल सी. सी. बक्षी अपनी " *वैश्विक चेतना* " किताब में मंत्रजाप के बारे में लिखते हैं कि प्रत्येक आवाज, ध्वनि या शब्द, उसका मानसिक या वाचिक उच्चारण होने पर उस समय निश्चित रूप में स्पंदन उत्पन्न करते हैं । जब हम विचार करते हैं उस समय भी (अपने मस्तिष्क में शब्द, ध्वनि की अस्पष्ट उत्पत्ति होती है जिसे संस्कृत व्याकरण के निष्णात या वैयाकरण स्फोट कहते हैं और) उस अक्षरों की निश्चित आकृति अपने मन के समक्ष बन जाती है ।

वर्तमान में पश्चिम में मंत्र, यंत्र व तंत्र के बारे में विशिष्ट कहा जाय ऐसा अनुसंधान चलता है और विभिन्न किताबों द्वारा मंत्र, यंत्र व तंत्र के रहस्य वैज्ञानिक पद्धति से प्रस्तुत किये जाते हैं ।

यंत्र वस्तुतः मंत्र में स्थित अक्षरों के संयोजन से बने हुए शब्द का आकृति स्वरूप है । थोड़े ही साल पहले इंग्लैण्ड से प्रकाशित एक अंग्रेजी किताब Yantra देखने को मिली । (लेखक : मधु खन्ना, प्रकाशक : Thames Hudson) उसमें रोनाल्ड नामेथ (Ronald Nameth) नाम के एक विज्ञानी ने टोनोस्कॉप (Tonoscope) नामक एक वैज्ञानिक उपकरण से इलेक्ट्रोनिक वाईब्रेशन फिल्ड (Electronic vibration field) में से श्रीसुक्त के ध्वनि को प्रसारित किया और उस ध्वनि का श्रीयंत्र की आकृति में रूपांतर हो गया । उसका स्थिर चित्र भी दिया गया है ।

इसका अर्थ यह हुआ कि श्रीयंत्र श्रीसुक्त का आकृति स्वरूप है । जिस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह ग्रामोफोन की रेकॉर्ड में ध्वनि को अंकित किया जाता है ठीक उसी तरह किसी भी मंत्र के ध्वनि को उसी साधन में से प्रसारित करने पर उसका आकृति स्वरूप प्राप्त हो सकता है । साथ-साथ कुछेक लोगों का मानना है कि जैसे ग्रामोफोन की रेकॉर्ड में से पुनः ध्वनि की प्राप्ति हो सकती है वैसे यंत्राकृति में से पुनः मंत्र की प्राप्ति हो सकती है । तथा जैसे आधुनिक भौतिकी में शक्ति का पुद्‌गल (द्रव्य कण) में और पुद्‌गल (द्रव्य कण) का शक्ति में परिवर्तन होता है वैसे ही मंत्र का यंत्र में और यंत्र का मंत्र में परिवर्तन हो सकता है । अतएव यंत्र के स्थान पर मंत्र और मंत्र के स्थान पर यंत्र रखा जा सकता है ।

प्राचीन काल के महापुरुष स्वयं जिन मंत्रों की आराधना करते होंगे, उन मंत्रों का आकृति स्वरूप अर्थात् यंत्रों को उन्हों ने स्वयं अपनी दिव्य दृष्टि से देखा होगा या तो उन मंत्रों के अधिष्ठायक देवों ने प्रत्यक्ष / प्रसन्न होकर उन मंत्रों का यंत्र स्वरूप उन साधकों को बताया होगा, बाद में उन साधकों ने उसी स्वरूप को भोजपत्र या ताडपत्र पर आलेखित किया होगा और वह परंपरा से अपने पास आया है ।

वस्तुतः यंत्र एक प्रकार का भिन्न भिन्न भौमितिक आकृतियों का संयोजन ही है । जैसे-जैसे भिन्न-भिन्न व्यंजन व स्वर के संयोजन से मंत्र निष्पन्न होता है वैसे-वैसे भिन्न-भिन्न प्रकार की भौमितिक आकृतियों के संयोजन से यंत्र बनते हैं ।

संक्षेप में, जिस तरह मंत्रजाप से इष्टफल सिद्धि होती है वैसे ही यंत्र भी इष्टफल की सिद्धि कर सकता है क्योंकि वह भी मंत्र का ही स्वरूप है । यह है ध्वनि की अद्‌भुत शक्ति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

8

मंत्रजाप के प्रकार और उसका वैज्ञानिक महत्त्व

पूजाकोटिसमं स्तोत्रं, स्तोत्रकोटिसमो जपः ।
जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमो लयः ।।

वीतराग परमात्मा या अन्य किसी भी देव या देवी इत्यादि की एक करोड़ बार की पूजा के बराबर एक बार की उनकी स्तुति-स्तवना-स्तोत्रपाठ है । करोड़ बार की स्तुति-स्तवना के बराबर एक बार का मंत्रजाप है । करोड़ बार के मंत्रजाप के बराबर एक बार का ध्यान है और करोड़ बार के ध्यान के बराबर केवल एक बार लय होता है क्योंकि लय में ध्याता, ध्येय और ध्यान तीनों एक हो जाते हैं ।

यहाँ सामान्य रूपसे पूजा कहने पर परमात्मा या देव-देवी की प्रतिमा की श्रेष्ठ द्रव्य केशर, चंदन इत्यादि से की गई पूजा लेना । वह भिन्न भिन्न प्रकार से अष्टप्रकारी, पंचप्रकारी एकोपचारी या इक्कीस प्रकार की या बहुविध प्रकार की होती है । इन्हीं पूजाओं में पूजन के द्रव्यों की महत्ता होती है और प्रायः उसमें शरीर का व्यापार, शारीरिक क्रिया ही मुख्य होती है । और ऐसी करोड़ बार की पूजा के बराबर एक ही बार का स्तोत्रपाठ होता है। अन्यथा देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा की पूजा करते समय मन, वचन, काया की एकाग्रता प्राप्त होने पर यदि मन शुभ या शुद्ध अध्यवसाय की श्रेणि पर आरूढ हो जाय तो नागकेतु की तरह केवल प्रभु की पूजा करते करते भी कैवल्यप्राप्ति हो सकती है । ठीक उसी प्रकार स्तुति-स्तवना-स्तोत्रपाठ में सामान्यतः वाणी / वचन और काया की क्रिया ही मुख्य होती है और मन की प्रवृत्ति गौण होती है । ऐसे करोड़ बार के स्तोत्रपाठ के बराबर एक बार का जाप होता है । जाप में सामान्य रूप से मन की ही प्रवृत्ति मुख्य होती है । वहाँ वचन/वाणी व काया की प्रवृत्ति प्रायः नहीं होती है और *" मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः "* उक्ति अनुसार जब मन अशुभ कार्य से निवृत्त होकर शुभ कार्य में प्रवृत्त होता है तब अशुभ कर्म के आस्रव का संवर हो जाता है और शुभ कर्म का बंध होता है । और उसमें ही आगे बढते-बढते जाप करने वाला ध्यानस्थ हो जाता है । अतएव करोड़ बार के जाप के बराबर एक बार का ध्यान होता है । उसी ध्यान में ध्याता, ध्येय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और ध्यान तीनों भिन्न भिन्न होते हैं । ध्यानस्थ आत्मा जब ध्याता, ध्येय और ध्यान तीनों का अभेद अनुभव करता है और परमात्म स्वरूप या आत्मरमणता में लीन हो जाता है तब वह लय की अवस्था को प्राप्त करता है । ऐसा लय करोड़ बार के ध्यान के बराबर होता है ।

उपर्युक्त श्लोक में पूजा, स्तुति(स्तोत्र)पाठ, जप, ध्यान व लय को उत्तरोत्तर ज्यादा शक्तिसंपन्न बताया गया है । उसमें जाप के तीन प्रकार हैं । 1. भाष्य या वाचिक, 2. उपांशु व 3. मानस ।

1. जाप करने वाले व्यक्ति के अलावा अन्य व्यक्ति भी सुन सके उसी प्रकार उच्चारणण पूर्वक जाप करना भाष्य या वाचिक जाप कहा जाता है ।

2. अन्य व्यक्ति सुन न सके उस प्रकार केवल ओष्ठ व जीभ हिलाकर जाप करना वह उपांशु जाप कहा जाता है ।

3. जिनमें ओष्ट, जीभ का भी उपयोग किये बिना ही केवल मन से ही जाप किया जाय उसे मानस जाप कहा जाता है ।

धर्मसंग्रह नामक ग्रंथ में उपाध्याय श्री मानविजयजी ने बताया है कि -

..सशब्दान् मौनवान् शुभः । मौनजान्मानसः श्रेष्ठः, जापः श्लाघ्यः परः परः ।।

सशब्द (भाष्य) जाप से मौन (उपांशु) जाप शुभ है और मौन जाप से मानस जाप श्रेष्ठ है । ये तीनों जाप उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ।

श्री पादलिप्तसूरिकृत प्रतिष्ठापद्धति (कल्प) में कहा है कि -

जाप के मानस, उपांशु व भाष्य तीन प्रकार है । जिनमें अन्तर्जल्प भी नहीं होता है, केवल मन से ही होने वाला जाप जिनको स्वयं ही जान सके उसे मानस जाप कहलाता है । जिनमें अन्तर्जल्प होने पर भी अन्य कोई भी सुन न सके वह उपांशु जाप और अन्य व्यक्ति सुन सके वह भाष्य जाप कहलाता है । पहला मानस जाप कष्टसाध्य है और उससे शांतिकार्य किया जाता है । अतः वह उत्तम है । दूसरा उपांशु जाप सामान्य व पौष्टिक कार्य के लिये किया जाता है अतः वह मध्यम है और तीसरा भाष्य जाप सुकर व दूसरों का पराभव (वशीकरण) इत्यादि के लिये किया जाता है अतः वह अधम कहा है ।

आधुनिक भौतिकी में डी. ब्रोग्ली नामक विज्ञानी ने द्रव्य-कण-तरंगवाद द्वारा बताया कि कोई भी सूक्ष्म कण तरंग स्वरूप में भी वर्तन करता है और उन कणों से संबंधित तरंग की तरंगलंबाई के लिये एक समीकरण / सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने दिया है । वह इस प्रकार है :-

$$\lambda = \frac{h}{mv}$$

जहाँ λ तरंगलंबाई, h प्लांक का नियतांक, m कण का द्रव्यमान v कण का वेग है । इसी सूत्र में $mv = p$ रखने पर $\lambda = h/p$ होता है । जहाँ p वेगमान है और उसी द्रव्य-कण की शक्ति के लिये सूत्र है - E = nhf, जहाँ E शक्ति है, h प्लांक का नियतांक है और f आवृत्ति (कंपनसंख्या = frequency) है और n=1, 2, 3, 4..... इत्यादि पूर्णांक (integer numbers) हैं । अर्थात् किसी भी तरंग स्वरूप द्रव्य-कण की शक्ति का आधार उसकी आवृत्ति पर है और आवृत्ति तरंगलंबाई के व्यस्त प्रमाण में बढती है या घटती है अर्थात् तरंगलंबाई बढने पर आवृत्ति घटती है और तरंगलंबाई कम होने पर आवृत्ति बढती है । और वह तरंगलंबाई भी द्रव्य-कण के द्रव्यमान (mass) व वेग के गुणाकार के व्यस्त प्रमाण में बढती है । अर्थात् किसी भी सूक्ष्म द्रव्य-कण का द्रव्यमान या वेग या तो दोनों बढाने पर तरंगलंबाई कम होती है । परिणामतः आवृत्ति बढती है अतः उसकी शक्ति भी बढती है । यही बात हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा निर्दिष्ट जाप के प्रकार को भी लागू पडती है ।

जैन धर्मग्रंथों के अनुसार वर्गणाओं के मुख्य रूप से आठ प्रकार है । वर्गणा जैन धर्मग्रंथों का पारिभाषिक शब्द है । वर्गणा अर्थात् एक समान संख्या में परमाणुओं को धारण करने वाले परमाणुसमूह प्रकार ।

प्रथम वर्गणा अर्थात् समग्र ब्रह्मांड में विकीर्ण एक एक परमाणु, जिनका स्वतंत्र अस्तित्व है । दूसरी वर्गणा अर्थात् दो दो परमाणुओं के समूह । तृतीय वर्गणा अर्थात् तीन तीन परमाणुओं के समूह । चतुर्थ वर्गणा अर्थात् चार चार परमाणुओं के समूह । संपूर्ण ब्रह्मांड में ऐसी वर्गणाओं के अनंतानंत प्रकार है किन्तु जीवों के लिये उपयोग में आनेवाली वर्गणा मुख्य रूप से आठ प्रकार की है ।

1. औदारिक वर्गणा, 2. वैक्रिय वर्गणा, 3. आहारक वर्गणा, 4. तैजस् वर्गणा, 5. भाषा वर्गणा, 6. श्वासोच्छ्वास वर्गणा, 7. मनो वर्गणा, व 8. कार्मण वर्गणा ।

सभी वर्गणाओ के परमाणुसमूह में अनंत परमाणु होते हैं तथापि औदारिक वर्गणा के परमाणुसमूह से वैक्रिय वर्गणा के परमाणुसमूह में ज्यादा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परमाणु होते हैं । उससे आहारक वर्गणा के परमाणुसमूह में ज्यादा परमाणु होते हैं । उसी तरह उत्तरोत्तर वर्गणा के परमाणुसमूह में ज्यादा ज्यादा परमाणु होते हैं अतः उसका परिणाम भी ज्यादा ज्यादा सूक्ष्म होता जाता है । अतः भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह से मनो वर्गणा के परमाणुसमूह में ज्यादा परमाणु होते हैं ।

यहाँ ध्यान रखने योग्य बात यह है कि जैन आगमों को विक्रम की पाँचवीं छट्ठी शताब्दी में लिपिबद्ध किया गया । उसके पूर्व जैन श्रमण परंपरा से आगम कंठस्थ रखने की परंपरा विद्यमान थी । जबकि आधुनिक भौतिकी के क्वॉन्टम मैकेनिक्स का अनुसंधान अभी हाल ही में विक्रम की बीसवीं सदी के अन्त में हुआ है ।

आधुनिक भौतिकी के अनुसार ध्वनि - शब्द अर्थात् भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह का वेग केवल 330 मीटर/सैकंड होता है । जबकि तैजस् वर्गणा के परमाणुसमूह अर्थात् विद्युद्‌चुंबकीयतरंगें (electromagnetic waves), प्रकाश व रेडियो और टी. वी. की तरंग का वेग 30 करोड़ मीटर/सैकंड होता है । अतएव भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह में तैजस् वर्गणा के परमाणुसमूह से ज्यादा परमाणु होने पर भी उसकी शक्ति कम मालुम पडती है । जबकि मनोवर्गणा के मन स्वरूप या विचार स्वरूप में परिणत परमाणुसमूह में सबसे ज्यादा परमाणु होते हैं । साथ-साथ हम अपने दैनिक जीवन में अनुभव करते हैं कि मन या विचारों के पुद्‌गल अर्थात् परमाणुसमूह की गति भी ज्यादा तेज होती है । अतः उसकी शक्ति भी सबसे अधिक होती है ।

आध्यात्मिक ऋषि-मुनिओं द्वारा बताये गये जाप के प्रकार में प्रथम वाचिक जाप में भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह का उपयोग होता है और उसका वेग बहुत कम होने से उसकी आवृत्ति भी बहुत ही कम होती है । उसी कारण से उसकी शक्ति भी बहुत कम होती है । अतः इस प्रकार किये गये जाप में उसकी ध्वनि उस मंत्र के अधिष्ठाता देव-देवी तक पहुँचने में देरी लगती है । इतना ही नहीं उसकी तीव्रता भी बहुत कम हो जाती है ।

जबकि दूसरे प्रकार के उपांशु जाप में भी भाषा वर्गणा के परमाणुसमूह का ही उपयोग होता है और उसका वेग भी 330 मीटर/सैकंड होता है किन्तु उसके द्वारा जाप में अश्राव्य ध्वनि तरंगे पैदा होती हैं । सामान्यरूप से हमारे कान ज्यादा से ज्यादा 20,000 की आवृत्ति वाली ही ध्वनि सुन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकते हैं । उससे ज्यादा आवृत्ति वाली ध्वनि अपने कान के लिये अग्राह्य होती है । अतः उपांशु जाप में पैदा होने वाली ज्यादा आवृत्ति वाली अश्राव्य ध्वनि तरंगे में ज्यादा शक्ति होती है । अतः भाष्य जाप से उपांशु जाप को अच्छा बताया है ।

सबसे श्रेष्ठ मानस जाप है क्योंकि उसमें केवल मनो वर्गणा के परमाणुसमूह का उपयोग होता है और उसमें परमाणु की संख्या भी ज्यादा होती है और उनका वेग भी सबसे ज्यादा होता है । अतः मानस जाप द्वारा उत्पन्न तरंगें सबसे ज्यादा आवृत्ति वाली होने से उसकी शक्ति भी अचिन्त्य है । यही मानस जाप की तरंगें तैजस् वर्गणा के विद्युद्-चुंबकीय तरंग से भी बहुत ज्यादा वेगवाली होने से और उसमें परमाणु की संख्या भी बहुत ज्यादा होने से उसमें अनंत शक्ति होती है । अतः तीनों प्रकार के जाप में मानस जाप को सबसे श्रेष्ठ बताया गया है । इसी जाप को अजपा जाप भी कहा जाता है क्योंकि इस जाप में वस्तुतः वाणी का उपयोग ही नहीं होता है ।

यही है मंत्रजाप का अद्भुत रहस्य ।

It is probably true. quite generally, that in the history of human thinking the most fruitful developments frequently take place at those points where two different lines of thought meet. These lines may have their roots in quite different parts of human culture, in different times or different cultural environments or different religious traditions: hence if they actually meet, that is, if they are at least so much related to each other that a real interaction can take place, then one may hope that new and interesting developments may follow.

Werner Heisenberg

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

9

भगवान महावीर : त्रिलोकगुरु

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदौ ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा ।।

गुरु की प्रतिमा या आकृति अर्थात् देह ध्यान का आलंबन है । गुरु के चरणकमल अर्थात् पैर पूजा का आलंबन है । गुरु का वाक्य या आदेश य शब्द मंत्र का मूल है या श्रेष्ठ मंत्र है और इन तीनों (ध्यान, पूजा व मंत्र से प्राप्त गुरुकृपा - आशीर्वाद मोक्ष का परम कारण है ।

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में गुरु का जितना माहात्म्य है इतन माहात्म्य शायद किसी भी पाश्चात्य परंपरा में आजतक विदित नहीं हुआ । भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में मुख्य तीन तत्त्व हैं । देव, गुरु व धर्म देव और गुरु एक जीवित व्यक्ति स्वरूप है । जबकि धर्म एक गुण स्वरूप भावात्मक है । देव और गुरु में मूलतः यही अंतर है कि देव शुरु में गु स्वरूप ही होते हैं । बाद में वे देव / देवाधिदेव परमात्म स्वरूप प्राप्त कर हैं । यही परमात्म स्वरूप अपना परमध्येय होता है । उनकी और धर्म भावात्मक स्वरूप की पहचान हमें गुरु ही कराते हैं । अतएव गुरु व माहात्म्य बताते हुए कबीरजी ने कहा है कि --

गुरु गोविंद दोनों खडे, किनको लागू पाय ।
बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दीयो बताय ।।

गुरु ने अभी पूर्ण रूप से परमात्म स्वरूप प्राप्त नहीं किया है कि परमात्म स्वरूप की प्राप्ति के सही मार्ग पर उन्होंने प्रस्थान कर दिया है उसी सही मार्ग की पहचान व अनुभवज्ञान प्रत्येक साधक के लिये मार्गदर्श हो पाता है और उसी मार्गदर्शक के बिना परमपद की प्राप्ति आत्मसाक्षात्कार का अनुभव प्राप्त होने की कोई संभावना नहीं है । अत भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में गुरु की अत्यावश्यकता महसूस की गई है

उनके बारे में एक जगह कहा है कि --

गुरु दीवो, गुरु देवता, गुरु विण घोर अंधार ।
जे गुरुओथी वेगला रडवड्या संसार ।।

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनिओं ने गुरु का इतना माहात्म्य निष्कारण न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बताया है । वे बहुत ज्ञानी थे और साथ-साथ काफी अनुभव ज्ञान भी उनको था । उन्होंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया था वह केवल गुरुओं की कृपा व आशीर्वाद से ही प्राप्त किया था और जिन्होंने गुरुओं के आशीर्वाद प्राप्त नहीं किये वे समर्थ व विद्वान होते हुए भी संसार में भटक गये हैं । ऐसा उन्होंने देखा है, अनुभव किया है । अतः उन्होंने गुरुओं का जो माहात्म्य बताया है वह सत्य है और आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी वह उचित है ।

प्रत्येक सजीव प्राणी चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म, सभी में एक प्रकार की शक्ति होती है जिसे आध्यात्मिक परिभाषा में आत्मशक्ति कहा जाता है । जबकि आधुनिक विज्ञान की परिभाषा में उसे जैविक विद्युद्‌चुंबकीयशक्ति कहा जाय । उस सजीव प्राणी की विद्युद्‌चुंबकीयशक्ति की तीव्रता का आधार आत्मा के विकास पर है । जितना आत्म विकास ज्यादा होगा उतनी शक्ति का प्रादुर्भाव ज्यादा होगा । यहाँ विकास का मतलब आध्यात्मिक विकास लेना चाहिये ।

" *न्यू सायन्टिस्ट* " नामक विज्ञान सामयिक में निश्चित प्रयोगों के बयान प्रकाशित हुये हैं । उसके अनुसार मनुष्य में भी ऐसा मॅग्नेटिक कंपास या चुंबकीय होकायंत्र है अर्थात् हम भी अज्ञात रूप में किसी भी व्यक्ति या चीज के विद्युद्‌चुंबकीयप्रभाव में आ सकते हैं ।

जिन्होंने विज्ञान का थोड़ा सा भी अध्ययन किया हो उसे मालुम होगा कि लोहचुंबक के इर्दगिर्द उसका अपना चुंबकीय क्षेत्र होता है । और उसे चुंबकीय रेखाओं के द्वारा बताया जाता है । यद्यपि यह चुंबकीय क्षेत्र अदृश्य होने पर भी यदि एक कागज पर एक लोहचुंबक रखकर उसके आसपास में लोह का चूर्ण बहुत ही अल्प प्रमाण में फैला दिया जाय व बाद में अंगुली से ठपकार ने पर वही लोहचूर्ण अपने आप ही चुंबकीय क्षेत्र में चुंबकीय रेखाओं के रूप में परिवर्तित हो जायेगा । इसी चुंबकीय क्षेत्र में यदि किसी लोह का टुकड़ा आ जाय तो यही लोहचुंबक उसको खींचता है, आकर्षित करता है । उसके चुंबकीय क्षेत्र में बार बार परिवर्तन करने पर विद्युत् प्रवाह उत्पन्न होता है और इसी विद्युत् प्रवाह को धातु के तार में से प्रसारित करने पर उसमें भी चुंबकत्त्व उत्पन्न होता है । इस प्रकार विद्युत् शक्ति व चुंबकीय शक्ति दोनों मिलकर विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति पैदा होती है । वैसी ही बल्कि उससे भी ज्यादा सूक्ष्म व शक्तिशाली विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सजीव प्राणी में होती है । स्थूल विद्युद्चुंबकीय शक्ति के सभी नियम सूक्ष्म विद्युद्चुंबकीय शक्ति को लागू होते हैं । जैसे एक चुंबक को दूसरे चुंबक के चुंबकीय क्षेत्र में रखा जाय तो उसके समान ध्रुवों के बीच में अपाकर्षण व असमान ध्रुवों के बीच में आकर्षण होता है अर्थात् एक चुंबक का प्रभाव उसके क्षेत्र में आये हुए दूसरे चुंबक या पदार्थ ऊपर पड़ता है । वैसे ही एक जीव के विचारों का प्रभाव उसके पास आये हुए दूसरे मनुष्य, प्राणी या पदार्थ के ऊपर पड़ता है । प्रत्येक पदार्थ के परिमंडल में भी विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र होता है जिसे आभामंडल कहा जाता है और किर्लियन फोटोग्राफी से उसकी तस्वीर भी ली जा सकती है । अतएव प्राचीन ऋषि-मुनिओं ने कहा है कि --:

चित्रं वटतरोर्मूले, वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा ।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं, शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः ।।

(आश्चर्य है कि बड़ के पेड़ के नीचे बैठे हुए योगी-मुनिओं में शिष्य वृद्ध हैं और गुरु युवान हैं । इससे भी ज्यादा आश्चर्य यह है कि गुरु का मौन ही प्रवचन है और उससे शिष्यों के संशय दूर हो जाते हैं ।)

इस प्रकार आध्यात्मिक रूप से विकसित गुरुओं के केवल सानिध्य से ही अनायास शिष्यों का आत्मिक विकास होता है और अचिन्त्य शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है ।

भारतीय आध्यात्मिक परंपरा में भिन्न भिन्न संप्रदायों में भिन्न भिन्न पद्धति से गुरु शिष्य को आशीर्वाद देते हैं । यही आशीर्वाद भी एक प्रकार का शक्तिपात ही है । सामान्यतः आशीर्वाद पाने का इच्छुक शिष्य आशीर्वाद देने वाले गुरु के चरणों में लीन होता है, नमस्कार करता है और गुरु के पैर पकडता है, उसी समय गुरु उसके मस्तक पर अपना हाथ रखते हैं और आशीर्वाद देते हैं । इसी प्रक्रिया के दौरान गुरु के हाथ में से निकलता हुआ विद्युत् प्रवाह शिष्य के मस्तिष्क से होकर उसी शिष्य के हाथ में आता है और उससे गुरु के चरणस्पर्श करने पर गुरु के चरण द्वारा यही विद्युत् प्रवाह गुरु में पुनः प्रविष्ट होता है । इस प्रकार विद्युत् प्रवाह का एक चक्र पूर्ण होने पर गुरु की शक्ति शिष्य में आती है । अन्य परंपरा में गुरु शिष्य के मस्तिष्क को सुंघते है । वहाँ भी ऐसा होता है ।

जैन परंपरा में श्रमण भगवान महावीरस्वामी जैनियों के चौबीसवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर थे और उनके प्रथम शिष्य श्री गौतमस्वामी थे । इन दोनों का गुरु शिष्य के रूप में संबंध प्रसिद्ध है ।यद्यपि उनका मूल नाम इन्द्रभूति था और गौतम उनका गोत्र था तथापि जैसे वर्तमान में बड़े लोग अल्ल - उपगोत्र (surname) से पहचाने जाते है वैसे प्राचीन काल में ऋषि-मुनि गोत्र के नाम से पहचाने जाते थे । अतः जैन परंपरा में वे गणधर श्री गौतमस्वामीजी के नाम से पहचाने जाते थे और वर्तमान में भी इसी नाम से ही उनकी आराधना की जाती है । जैन धर्मग्रंथ कल्पसूत्र के अनुसार जब भगवान महावीरस्वामी की उम्र 42 साल थी और गौतमस्वामी की उम्र 50 साल थी तब दोनों का मिलाप हुआ था । उससे पूर्व श्री गौतमस्वामीजी 14 विद्या के पारगामी विद्वान ब्राह्मण पंडित थे और वे यज्ञ-याग कराते थे । उनके पास 500 ब्राह्मण शिष्यों का परिवार था । जब तक इन्द्रभूति गौतम ने भगवान महावीरस्वामी के दर्शन नहीं किये थे और उनके आध्यात्मिक विद्युद्‌चुंबकीय क्षेत्र में प्रवेश नहीं किया था तब तक वे भगवान महावीर को भी वाद-विवाद में परास्त करके अपनी विजय पताका समग्र विश्व में फैलाने की ख्वाहिश रखते थे । किन्तु जहाँ भगवान महावीरस्वामी बिराजमान थे उसी समवसरण के पास आते ही एवं दर्शन होते ही भगवान महावीर को जीतने के उनके अरमान चूरचूर हो गये और स्वयं भगवान महावीर के ध्यान में खो गये और इस प्रकार " *ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः* " पद यथार्थ हो पाया ।

कहा जाता है कि जब तीर्थंकर परमात्मा धर्मोपदेश देते हैं तब बारह बारह योजन दूर से मनुष्य व पशु-पक्षी उनका धर्मोपदेश सुनने को आते हैं अर्थात् उनका विद्युद्‌चुंबकीय क्षेत्र बारह योजन तक फैला हुआ होता है ।

वर्तमानयुग में शारीरिक रोग को दूर करने के लिये जैसे एक्यूपंक्चर, एक्युप्रेशर, रंगचिकित्सा पद्धति का उपयोग होता है वैसे ही चुंबकीय पद्धति का भी उपयोग होता है । यही बात त्रिलोकगुरु भगवान महावीरस्वामी की केवली अवस्था के वर्णन से फलित होती है । उनका जैविक विद्युद्‌चुंबकीय क्षेत्र इतना शक्ति संपन्न था कि वे जहाँ जहाँ विहार करते वहाँ वहाँ उसी क्षेत्र में विहार के दौरान सभी लोगों के रोग इत्यादि दूर हो जाते थे और विहार के बाद भी छः माह तक कोई रोग नहीं होते थे । किसीको आपस में वैरभाव भी नहीं रहता था और उनके प्रभाव से अतिवृष्टि या अनावृष्टि भी नहीं होती थी । मानों उन्होंने इन सब ऊपर हिप्नोटिजम-मेस्मेरिझम किया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न हो !

वास्तव में तीर्थंकरों के जीवन के ये सब अतिशय / विशेष परिस्थितियाँ कोई चमत्कार व जादू-टोना नहीं था किन्तु उनकी आत्मा से दूर हुए कर्म के कारण प्रादुर्भाव हुयी आत्मशक्ति या विद्युद्‌चुंबकीय शक्ति का प्रभाव था ऐसा निकट के भविष्य में यदि कोई विज्ञानी द्वारा सिद्ध हो तो आश्चर्य की बात नहीं होगी । इन्द्रभूति गौतम को भगवान महावीरस्वामी के पास से आत्मा के अस्तित्व के बारे में अपनी अमूर्त अरूपी शंका का समाधान प्राप्त होते ही उन्होंने भगवान माहवीरस्वामी को अपने गुरु को रूप में स्वीकार किया और अपना संपूर्ण जीवन गुरुचरण में समर्पित करके *" पूजामूलं गुरोः पदौ "* पद को चरितार्थ किया और जब श्रमण भगवान महावीरस्वामी इन्द्रभूति आदि ग्यारह ब्राह्मण पंडितों को दीक्षा देते हैं उसी समय भगवान स्वयं इन्द्र के हाथ में रखे हुए रत्नजड़ित सुवर्ण थाल में से वास चूर्ण लेकर सभी गणधरों के मस्तिष्क पर डालकर आशीर्वाद देते हैं । उसी आशीर्वाद द्वारा अपने केवलज्ञान स्वरूप प्रकाश का अंश शिष्यों में संक्रमित करते हैं । उससे श्रमण भगवान महावीरस्वामी द्वारा दिये गये केवल तीन पद (1) उप्पन्ने इ वा, (2) विगमे इ वा, (3) धुवे इ वा (जिनको जैन परिभाषा में त्रिपदी कही जाती है) के आधार पर संपूर्ण द्वादशांगी व चौदह पूर्वों जैसे महान धर्मग्रंथों की रचना करते हैं । इस प्रकार गुरु के शब्द स्वरूप त्रिपदी उनके लिये मंत्र स्वरूप होती है और ऐसे मंत्रमूलं *" गुरोर्वाक्यं पद "* चरितार्त होता है ।

दीक्षा के बाद प्रायः 30 साल तक उनके प्रथम शिष्य श्री गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान महावीरस्वामी की सेवा शुश्रुषा, भक्ति-वैयावच्च की और उनके प्रभाव से श्री गौतमस्वामी को विशिष्ट लब्धियाँ / शक्तियाँ प्राप्त हुयीं । जिसके कारण उनके नाम के आगे अनंतलब्धिनिधान ऐसा सार्थक विशेषण रखा जाता है । तथापि उनको केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है । उसका कारण केवल यही था कि उनको भगवान महावीर के प्रति अनन्य राग था । उसको दूर करने के लिये भगवान महावीर अपने निर्वाण समय की रात को इन्द्रभूति गौतम को पास में आये हुये गाँव में स्थित देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध करने के लिये भेज देते हैं । उसी ब्राह्मण को प्रतिबोध करके वापिस आते हुये इन्द्रभूति गौतम को रास्ते में प्रभु महावीर के निर्वाण के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार प्राप्त होते ही वे व्याकुल हो उठते हैं और उसी गुरु की विरह वेदना में से वैराग्य पैदा होता है और श्रमण भगवान महावीरस्वामी से राग के बंधन टूटते ही उनको केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है । इस प्रकार मोक्षमूलं गुरोः कृपा पद भी श्री गौतमस्वामी के जीवन में चरितार्थ होता है ।

इस प्रकार श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी वास्तव में त्रिलोकगुरु - त्रिजगगुरु थे ।

What is soundless, touchless, formless, imperishable, Likewise tasteless, constant, odourless, Without beginning, without end, higher than the great, stable — By discerning that, one is liberated from the mouth of death. *Kathopnishad – 3.15*

Knowledge, which comes from such an experience, is called 'absolute knowledge'.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

10

ब्रह्मचर्य : वैज्ञानिक विश्लेषण

आज समग्र विश्व में अनाचार से फैलनेवाला एइड्झ रोग व्यापक हो चुका है, तब इस रोग से बचने के लिये केवल एक ही उपाय बचा है । वह है परिणत गृहस्थों के लिये स्वदारासंतोषविरमण व्रत अर्थात् एकपत्नीत्व तथा अन्य व्यक्ति के लिये ब्रह्मचर्य का पालन ही है । आजका समाज विज्ञान की सिद्धियों से इतना प्रभावित है कि किसी भी विषय में केवल विज्ञान के निष्कर्षों को ही अंतिम सत्य मानकर चलता है । किन्तु प्रत्येक क्षेत्र के विज्ञानी स्वयं स्वीकार करते हैं कि हमने प्रकृति के बहुत से रहस्य उद्घाटित किये है तथापि उनसे भी ज्यादा रहस्य उद्घाटित करना बाकी है । अतः विज्ञान के क्षेत्र में किसी भी अनुसंधान को अंतिम सत्य या निरपेक्ष सत्य के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहिये ।

सामान्यतः मनुष्य व सभी प्राणी का स्वभाव है कि उनके अनुकूल हो उसे वह जल्दी से स्वीकार कर लेता है । सभी प्राणीयों में आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की संज्ञा अर्थात् भाव अनादि काल से इतना प्रबल है कि इन्हीं चार भाव के अनुकूल किसी भी विचार को वह तुरंत स्वीकार कर लेता है । अतएव ब्रह्मचर्य के बारे में किये गये अनुसंधान जितने जल्दी से आचरण में नहीं आते उससे ज्यादा जल्दी से सिर्फ कहेजाने वाले सेक्सोलॉजिस्टों के निष्कर्ष तथा फ्रोइड जैसे मानसशास्त्रियों के निष्कर्ष स्वीकृत हो पाते हैं । हालाँकि उनके ये अनुसंधान बिल्कुल तथ्यहीन नहीं हैं तथापि व् केवल सिक्के की एक ही बाजू है । ब्रह्मचर्य के लिये फ्रोइड की अपनी मान्यता के अनुसार वीर्य तो महान शक्ति है । उसी शक्ति का सदुपयोग करना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पालन करके मानसिक व बौद्धिक शक्ति बढानी चाहिये । अतः सिक्के की दूसरी बाजू का भी विचार करना चाहिये ।

इसके लिये रेमन्ड बर्नार्ड की किताब "Science of Regeneration" देखना चाहिये । उसमें वे कहते हैं कि मनुष्य की सभी जातिय वृत्तियों का संपूर्ण नियंत्रण अंतःस्त्रावि ग्रंथियों के द्वारा होता है । अंतःस्त्रावि ग्रंथियों को अंग्रेजी में ऍन्डोक्राइन ग्लेन्ड्स कहते हैं । यही ऍन्डोक्राइन ग्लेन्ड्स जातिय रस उत्पन्न करती है और उसका अन्य ग्रंथियों के ऊपर भी प्रभुत्व रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे खून में स्थित जातिय रसों यानि कि होर्मोन्स की प्रचुरता के आधार पर हमारा यौवन टिका रहता है । जब ये अंतःस्त्रावि ग्रंथियाँ जातिय रस कम उत्पन्न करने लगती हैं तब हमें वृद्धत्व व अशक्ति का अनुभव होने लगता है ।

ब्रह्मचर्य का शारीरिक, मानसिक व वाचिक वैसे तीनों प्रकार से पालन न होने पर पुरुष व स्त्री दोनों के शरीर में से सेक्स होर्मोन्स बाहर निकल जाते हैं । ये सेक्स होर्मोन्स ज्यादातर लेसीथीन, फॉस्फरस, नाइट्रोजन व आयोडीन जैसे जीवन जरूरी तत्त्वों से बने हैं । अंतिम अनुसंधानों के अनुसार लेसीथीन नामक तत्त्व मस्तिष्क का पौष्टिक आहार है । पागल मनुष्यों के खून में लेसीथीन बहुत कम पाया गया । उनकी पूर्वावस्था का अध्ययन करने पर मालुम पडा कि उनमें से बहुत से आदमी अपनी युवावस्था में ही बहुत प्रमाण में अनाचार करते थे ।

तो क्या आज भोग-विलास से भरपूर युग में मन, वचन, काया से पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन संभव है ? उनका उत्तर बहुत से लोग " ना " में देंगे किन्तु मेरी दृष्टि से प्राचीन आचार्य व महर्षियों द्वारा निर्दिष्ट ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ अर्थात् नियम या मर्यादाओं का यथार्थ रूप से पूर्णतया पालन किया जाय तो ब्रह्मचर्य का संपूर्ण पालन सरल व स्वाभाविक हो सकता है । जैन धर्मग्रंथों के अनुसार वे इस प्रकार हैं :--

1. स्त्री (पुरुष) व नपंसक से मुक्त आवास में रहना ।

2. अकेले पुरुष द्वारा अकेली स्त्री को स्त्रियों को धर्मकथा भी नहीं कहना और पुरुषों को स्त्री संबंधी व स्त्रियों को पुरुष संबंधी कथा / बातों का त्याग करना ।

3. स्त्री के साथ पुरुष को एक आसन ऊपर नहीं बैठना और स्त्री द्वारा उपयोग किये गये आसन पर पुरुष को दो घडी / 48 मिनिट तथा पुरुष द्वारा उपयोग किये गये आसन पर स्त्री को एक प्रहर/तीन घंटे तक नहीं बैठना चाहिये ।

4. स्त्री द्वारा पुरुष के और पुरुष द्वारा स्त्री के नेत्र, मुख इत्यादि अंगों को स्थिर दृष्टि से नहीं देखना ।

5. जहाँ केवल एक ही दीवाल आदि के व्यवधान में स्थित स्त्री-पुरुष की काम-क्रीडा के शब्द सुनायी पड़ते हों ऐसे " कुड्यन्तर " का त्याग करना ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

6. पूर्व की गृहस्थावास में की गई कामक्रीडा के स्मरण का त्याग करना।

7. प्रणीत आहार अर्थात् अतिस्निग्ध, पौष्टिक, तामसिक, विकारक आहार का त्याग करना ।

8. रुक्ष अर्थात् लुख्खा, सुक्का आहार भी ज्यादा प्रमाण में नहीं लेना ।

9. केश, रोम, नख इत्यादि को आकर्षक व कलात्मक ढंग से नहीं काटना । स्नान विलेपन का त्याग करना । शरीर को सुशोभित नहीं करना।

स्वामिनारायण संप्रदाय में भी ब्रह्मचर्य का बहुत माहात्म्य है । उस संप्रदाय के निष्कुलानंदजी ने तो उपर्युक्त ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ के संबंध में एक काव्य/पद भी बनाया है और उसमें उसका महिमा बतायी है ।

ऊपर बतायी हुयी ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ पूर्णतः वैज्ञानिक है । उसका वैज्ञानिक विश्लेषण इस प्रकार दिया जा सकता है ।

ब्रह्मचर्य की प्रथम मर्यादा के अनुसार साधु को स्त्री, नपुंसक व पशु-पक्षी आदि से मुक्त आवास में रहना चाहिये । प्रत्येक जीव में सूक्ष्मस्तर पर विद्युद्शक्ति होती है । उदाहरण के रूप में समुद्र में इलेक्ट्रिक इल नामक मछली होती है । उसके विद्युद्प्रवाह का हमें अनुभव होता है । जहाँ विद्युद्शक्ति होती है वहाँ चुंबकीय शक्ति भी होती है । इस प्रकार हम सब में जैविक विद्युद्चुंबकीय शक्ति है । अतः सब को अपना विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र भी होता है । चुंबकत्व के नियम के अनुसार पास में आये हुए समान ध्रुवों के बीच अपाकर्षण और असमान ध्रुवों के बीच आकर्षण होता है । स्त्री व पुरुष में चुंबकीय ध्रुव परस्पर विरुद्ध होते हैं अतः उन दोनों के बीच आकर्षण होता है । अतः ब्रह्मचर्य के पालन करने वाले पुरुष को स्त्री, नपुंसक व पशु-पक्षी रहित स्थान में रहना चाहिये ।

ब्रह्मचर्य की दूसरी बाड़ / मर्यादा के अनुसार अकेले पुरुष को अकेली स्त्री से धर्मकथा भी नहीं कहनी चाहिये तथा पुरुष को स्त्री संबंधी व स्त्री को पुरुष संबंधी बातों का त्याग करना चाहिये । जब अकेला पुरुष अकेली स्त्री से बात करता है तब दोनों परस्पर एक दूसरे के सामने देखते हैं और ऊपर बताया उसी प्रकार स्त्री व पुरुष में चुंबकीय ध्रुव परस्पर विरुद्ध होने से परस्पर सामने देखने से दोनों की आँखों में से निकलती हुयी चुंबकीय रेखाएँ एक हो जाने से चुंबकीय क्षेत्र भी एक हो जाता है । परिणामतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चुंबकीय आकर्षण बढ जाता है और यदि विद्युद्प्रवाह का चक्र पूरा हो जाय तो दोनों के बीच तीव्र आकर्षण पैदा होता है । परिणामतः संयमी पुरुष का पतन होता है ।

ब्रह्मचर्य की चौथी बाड़ के अनुसार स्त्री को पुरुष के व पुरुष को स्त्री के नेत्र, मुख इत्यादि अंगों को स्थिर दृष्टि से नहीं देखने का भी यही कारण है ।

ब्रह्मचर्य की तीसरी बाड़/नियम के अनुसार स्त्री-पुरुष को एक आसान ऊपर नहीं बैठना व जिस स्थान पर स्त्री बैठी हो उसी स्थान पर ब्रह्मचारी पुरुष को 48 मिनिट व जिस स्थान पर पुरुष बैठा हो उसी स्थान पर स्त्री को 3 घंटे तक नहीं बैठना चाहिये । कोई भी मनुष्य किसी भी स्थान पर बैठता है उसी समय उसके शरीर के इर्दगिर्द उसके विचार के आधार पर अच्छा या दूषित एक वातावरण बन जाता है । उसके अलावा जहाँ कहीं बैठे हुये स्त्री या पुरुष के शरीर में से सूक्ष्म परमाणु उत्सर्जित होते रहते हैं । उसी परमाणु का कोई बुरा प्रभाव हमारे चित्त पर न हो इस कारण से ही ब्रह्मचर्य की नौ बाड़ में इसी नियम का समावेश किया गया है ।

ब्रह्मचर्य की पाँचवीं बाड़ में कुड्यन्तर का त्याग बताया है और छट्ठी बाड़ में पूर्व के गृहस्थावास में की गई कामक्रीडा के स्मरण का त्याग बताया है । उपर्युक्त दोनों प्रकार के कार्य से मनुष्य का जैविक विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र विकृत बनता है । वस्तुतः अपने शुभ या अशुभ विचार ही अपने जैविक विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र को अच्छा या बुरा बनाता है । इसी जैविक विद्युद्चुंबकीय क्षेत्र को आभामंडल भी कहा जाता है । इसकी विशेषता यह है कि उसको मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी दिशा में फैला सकता है । अतः किसी भी विजातिय व्यक्ति संबंधित अशुभ विचार भी दोनों के बीच परस्पर मानसिक आकर्षण पैदा करता है । बाद में दोनों के बीच मानसिक संयोग होने पर अज्ञात रूप से अदृश्य मैथुन सेवन / अनाचार होकर ब्रह्मचर्य व्रत का खंडन हो जाता है ।

स्त्री-पुरुष के परस्पर विरुद्ध ध्रुवों का संयोजन पाँच प्रकार से हो सकता है । 1. साक्षात् मैथुन से, 2. सिर्फ स्पर्श से, 3. रूप अर्थात् चक्षु से, 4. शब्द अर्थात् वाणी या वचन से और 5. मन से । अतएव ब्रह्मचर्य का संपूर्ण नैष्ठिक पालन करने वाली व्यक्ति को शास्त्रकारों ने विजातिय व्यक्ति का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तनिक भी स्पर्श करने की या उसके सामने स्थिर दृष्टि से देखने की, उसके साथ बहुत लंबे समय तक बातचीत करने की या मन से उसका विचार करने की मनाई की है ।

तत्त्वार्थ सूत्र नामक जैन ग्रंथ के चौथे अध्याय में प्राप्त देव संबंधित वैषयिक सुख का वर्णन उपर्युक्त बात का साक्षी है । तत्त्वार्थ सूत्रकार श्री उमास्वातिजी कहते हैं कि इशान देवलोक तक के देव साक्षात् मैथुन द्वारा, उससे ऊपर के देव अनुक्रम से केवल स्पर्श द्वारा, केवल चक्षु द्वारा, केवल वचन द्वारा, व केवल मन द्वारा अपनी कामेच्छा की पूर्ति करते हैं ।

ब्रह्मचर्य के पालन के लिये अतिस्निग्ध, पौष्टिक या तामसिक आहार का त्याग करना चाहिये । सामान्यतः साधु को दूध, दही, घी, गुड, सक्कर, तेल, पक्वान्न, मिठाई का आहार करने की मनाई की गयी है क्योंकि ये सभी पदार्थ शरीर में विकार पैदा करने में समर्थ हैं । किन्तु जो साधु निरंतर साधना, अभ्यास, अध्ययन, अध्यापन इत्यादि करते हैं या शरीर से अशक्त हों तो इन सब में से कोई पदार्थ गुरु की आज्ञा से ले सकता है । यदि शरीर को आवश्यकता से ज्यादा शक्ति मिले तो भी विकार पैदा होता है । अतः ब्रह्मचर्य के पालन के लिये अतिस्निग्ध, पौष्टिक या तामसिक आहार का त्याग करना चाहिये ।

ठीक उसी तरह रूख्खा सुखा आहार भी ज्यादा प्रमाण में लेने पर भी शरीर में विकार व जड़ता पैदा करता है । अतएव ऐसा रुक्ष आहार भी मर्यादित प्रमाण में लेना चाहिये ।

केश, रोम, नख को आकर्षक व कलात्मक रूप से काटना या स्नान-विलेपन करना ब्रह्मचारी के लिये निषिद्ध है क्योंकि ब्रह्मचारीओं का व्यक्तित्व ही स्वभावतः तेजस्वी - ओजस्वी होता है । अतः उनको स्नान-विलेपन करने की आवश्यकता नहीं है । यदि वे स्नान-विलेपन इत्यादि करें तो ज्यादा देदीप्यमान बनने से अन्य व्यक्ति के लिये आकर्षण का केन्द्र बनते हैं । परिणामतः क्वचित् अशुभ विचार द्वारा विजातिय व्यक्ति का मन व चुंबकीय क्षेत्र मलीन होने पर उसके संपर्क में आने वाले साधु का मन भी मलीन होने में देर नहीं लगती । अतएव साधु को शरीर अलंकृत नहीं करना चाहिये या स्नान-विलेपन नहीं करना चाहिये ।

इन नव नियमों का बड़ी कडाई से जो पालन करते है उनके लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन करना आज के युग में भी संभव है और उससे विभिन्न प्रकार की लब्धि व सिद्धि प्राप्त होती हैं ।

इसके अलावा नैष्ठिक ब्रह्मचर्ययुक्त महापुरुषों के सानिध्य में और उनके स्मरण से भी नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है । हम सब के परम उपकारी गुरुदेव शासनसम्राट आचार्य श्रीविजयनेमि-सूरीश्वरजी महाराज भी ऐसे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के तेजपुंज थे । उनके नामस्मरण से भी हममें नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने का सामर्थ्य पैदा होता है ।

When the Eastern mystics tell us that they experience all things and events as manifestations of a basic oneness, this does not mean that they pronounce all things to be equal. They recognize the individuality of things, but at the same time they are aware of that all differences and contrasts are relative within an all-embracing unity. Since in our normal state of consciousness, this unity of all contrasts—and especially the unity of opposites—is extremely hard to accept, it constitutes one of the most puzzling features of Eastern philosophy.

Frtjof Capra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

11

भगवान महावीरस्वामी का तप व उसका वैज्ञानिक रहस्य

श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी ने दीक्षा लेने के बाद बारह वर्ष, छः माह व पन्द्रह दिन तक विभिन्न प्रकार के तप किये । वे इस प्रकार हैं :-- बिना पानी पीये किये गये छः माह के उपवास एक बार, पाँच दिन न्यून छः माह के उपवास एक बार, नौ बार चार चार माह के उपवास, दो बार तीन तीन माह के उपवास, दो बार ढाई ढाई माह के उपवास, छः बार दो दो माह के उपवास, दो बार 45 -45 दिन के उपवास, बारह दफे एक एक माह के उपवास, बहत्तर बार 15 - 15 दिन के उपवास, 12 अट्ठम (तीन दिन के उपवास), 229 छट्ठ (दो दिन के उपवास), 10 दिन के उपवास की एक सर्वतोभद्र प्रतिमा, 4 दिन के उपवास की महाभद्र प्रतिमा, दो दिन के उपवास की भद्र प्रतिमा नामक तप व एक दीक्षा दिन का उपवास ।

श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के जीवन में से प्रेरणा लेकर आज के युग में भी बहुत से जैन विभिन्न प्रकार के तप करते हैं । ऐसे तप करने का दरअसल में प्रयोजन मोक्षप्राप्ति होती है । तथापि जैन धर्म में बताये हुये तप व उसके प्रकार पूर्णतया वैज्ञानिक है ।

रात्रिभोजन का त्याग भी आज के युग में एक प्रकार का तप ही है । शरीर विज्ञान की दृष्टि से रात्रि के समय में प्रायः शारीरिक परिश्रम कम होता है अतः पाचन की प्रक्रिया भी मंद हो जाती है । अतएव रात्रिभोजन करनेवालों को ज्यादातर अजीर्ण, गैस (वायु) इत्यादि रोग होते हैं । उस के अलावा सूर्यप्रकाश के अभाव में वातावरण व खुराक में भी सूक्ष्म जीवाणुओं की ज्यादातर उत्पत्ति व वृद्धि होती है । सूर्यप्रकाश में ऐसी विशिष्ट शक्ति है कि उसके अस्तित्व में वातावरण का प्रदूषण व गैर आवश्यक सूक्ष्म जीवाणु भी खत्म हो जाते हैं । उसमें भी सूर्योदय पश्चात् 48 मिनिट बाद व सूर्यास्त से 48 मिनिट पूर्व भोजन करने का विधान है क्योंकि सूर्योदय व सूर्यास्त के समय मच्छर, मक्खी इत्यादि क्षुद्र जंतुओं का भारी उपद्रव होता है ।

जैन धर्म के अनुसार बियासणा के तप में सारे दिन में सिर्फ दो बार ही भोजन करने का विधान है । उसमें भी रात्रिभोजन व रात को जल का भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्णतः त्याग करना होता है और दिन में भी ऊबाला हुआ जल पीने का होता है । इसी वजह से आरोग्य विज्ञान की दृष्टि से जल में स्थित सूक्ष्म जीवाणु द्वारा होने वाले रोग से हम बच सकते हैं ।

एकासन अर्थात् दिन में सिर्फ एकबार ही एक साथ खा लेना । उसके पहले और बाद में दिन में सिर्फ ऊबाले हुए पानी के अलावा कुछ नहीं लेना । ऐसे दिन में सिर्फ एक बार ही नियमित खाने से शरीर के यंत्र को रात को पूर्णतः आराम मिलता है । अतः रात को खून व ऑक्सिजन की भी कम जरूरत पडती है । परिणामतः हृदय व फेफडों को ज्यादा श्रम नहीं करना पड़ता है । अतः शरीर को पूर्ण आराम मिलता है और सुबह के कार्यों में स्फूर्ति का अनुभव होता है । एकासन व बियासणा के आहार में भी अभक्ष्य, अपथ्य व तामसिक आहार का त्याग होता है और सात्त्विक, पौष्टिक व संतुलित आहार लिया जाता है । अतः अभक्ष्य या तामसिक खुराक से उत्पन्न होने वाली विकृतियाँ पैदा नहीं होती हैं ।

आहार के तीन प्रकार हैं : 1. सात्त्विक, 2. राजसिक, 3. तामसिक । सात्त्विक जीवन के लिये सात्त्विक आहार ही करना चाहिये । संभव हो तो राजसिक आहार भी नहीं करना चाहिये किन्तु तामसिक आहार तो कभी नहीं करना क्योंकि वह क्रोधादि कषायों को उत्पन्न करने वाला या उसका पोषक या उद्दीपक है । जैन धर्म ग्रंथों में बताये हुए नीति-नियम के अनुसार आहार करने वाले तामसिक आहार का सरलता से त्याग कर सकते हैं । परिणामतः कोई रोग उत्पन्न नहीं होते हैं ।

आयंबिल एक विशिष्ट प्रकार का तप है । इस तप में दिन में सिर्फ एक ही बार रूखा सूखा आहार लिया जाता है । उसमें मुख्य रूप से दूध, दही, घी, गुड, सक्कर, तेल, पक्वान्न, मिष्टान्न का त्याग होता है । उसमें हल्दी, मिर्च-मसाला या दूसरा कोई भी नमकीन नहीं लिया जाता है । इस तप से आध्यात्मिक दृष्टि से जीभ पर विजय पाकर शेष चारों इद्रियों पर भी विजय पाया जा सकता है । सभी इन्द्रियाँ वश में आने पर चार कषाय और मन पर विजय प्राप्त होती है । परिणामतः कर्मबंध अल्प व निर्जरा ज्यादा होनेसे मोक्षप्राप्ति हो सकती है ।

इसके अलावा इस तप से शरीर में कफ व पित्त का शमन होता है क्योंकि कफ उत्पन्न करने वाले पदार्थ दूध, दही, घी, गुड, शक्कर, तेल,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्वान्न, मिष्टान्न सभी का इस तप में पूर्णतः त्याग होता है । हरी सब्जी जो सामान्यतः पित्तवर्धक होती हैं उनका भी त्याग होता है । आयुर्वेद की दृष्टि से सर्व रोग का मूल वात, पित्त और कफ की विषमता ही है । सामान्यतः लोग पित्त व कफ उत्पन्न हो वैसे ही पदार्थ खाते हैं । परिणामतः आरोग्य बिगडता है । जैन ग्रंथकारों ने भी प्रति माह पाँच या बारह दिन और बारह माह में चैत्र व आसोज माह में नौ-नौ दिन आयंबिल करने को कहा है । चैत्र व आसोज माह ऋतुओं का संधिकाल है । इस समय विशेषतः रोग होने की संभावनाएँ अधिक होती हैं । यदि आहार में पथ्यापथ्य का विवेक न रखा जाय तो बहुत लंबे समय की बिमारी हो सकती है । आयुर्वेद में कहा है कि *" वैद्यानां शारदी माता, पिता तु कुसुमाकरः । "* वैद्यराजों के लिये शरद ऋतु माता है और वसंत ऋतु पिता है क्योंकि इन ऋतुओ में ही लोग अधिक बिमार होते हैं और डॉक्टर व वैद्यों को अच्छी आमदनी होती है ।

उपवास जैन धर्म का एक अनोखा विशिष्ट तप है । उपवास दो प्रकार के होते हैं । 1. तिविहार और 2. चौविहार । जैन परंपरा के अनुसार उपवास का प्रारंभ अगले दिन शाम से होता है और समाप्ति तीसरे दिन सुबह होती है । अतः पूरे 36 घंटे का उपवास होता है । तिविहार उपवास में सुबह 10 बजे से सूर्यस्त तक सिर्फ ऊबाला हुआ ठंडा पानी ही पीया जाता है । जबकि चउविहार उपवास में पानी का एक बूंद भी नहीं लिया जाता है ।

जीवन के लिये हवा, पानी व आहार आवश्यक है । शक्ति के लिये आहार और आहार को पचाने लिये पानी व पचे हुए आहार में से शक्ति पाने के लिये ऑक्सिजन स्वरूप में हवा आवश्यक है । उपवास जैसे आत्मशुद्धि का साधन है वैसे वह देहशुद्धि का भी साधन है । उपवास करने से शरीर के अंदर से कचरा निकल जाता है । शरीर में बढे हुए वात, पित्त व कफ का उपशम या उत्सर्जन होता है और शरीर शुद्ध होता है । उपवास में किसी को दुसरे या तीसरे दिन पित्त का वमन होता है और उसके द्वारा बढा हुआ पित्त बाहर निकल जाता है । कफ हो तो वह भी दूर हो जाता है । अत- पंद्रह दिन या महिने में एक उपवास अवश्य करना चाहिये ।

संक्षेपमें, जैन धर्म में बताया गया रात्रिभोजन का त्याग, बियासना, एकासना, आयंबिल, उपवास आदि तप आरोग्यविज्ञान व शरीरविज्ञान की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि से पूर्णतः वैज्ञानिक हैं और उससे आध्यात्मिक लाभ के साथ-साथ शारीरिक तंदुरस्ती में भी बहुत से फायदे होते हैं ।

The Eastern religious philosophies are concerned with timeless mystical knowledge, which lies beyond reasoning and cannot be adequately expressed in words. The relation of this knowledge to modern physics is but one of its many aspects and, like all the others, it cannot be demonstrated conclusively but has to be experienced in a direct intuitive way.

Fritjof Capra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

12

पर्व-तिथि में हरी सब्जी का त्याग क्यो ?

प्राचीन काल से जैन धर्म आहार-विहार व आचार-विचार की प्रणाली के लि सारे विश्व में प्रसिद्ध है । इसके प्रत्येक सिद्धांत व आहार-विहार आचार-विचार के प्रत्येक नियम पूर्णतः वैज्ञानिक हैं क्योंकि ये नियम को सामान्य व्यक्ति द्वारा स्थापित नहीं किये गये हैं किन्तु जैनधर्म के 24 तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी ने उनको केवलज्ञान पूर्ण ज्ञान प्राप्त होने के बा अपने शिष्य परिवार, साधु-साध्वी व अनुयायी स्वरूप श्रावक-श्राविका औ इससे भी बढकर समग्र मानवजाति व संपूर्ण सजीवसृष्टि के परम कल्या के लिये बतायें हैं ।

जैन परंपरा में प्रचलित बहुत से नियमों में से एक नियम ऐसा है वि जैनधर्म का पालन करने वाले साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका को प्रति मा बारह पर्व-तिथि (दो द्वितीया, दो पंचमी, दो अष्टमी, दो एकादशी, द चतुर्दशी व पूनम व अमावास्या) या पाँच पर्वतिथि (शुक्ल पंचमी, दो अष्टम व दो चतुर्दशी) और छह अठ्ठाई (कार्तिक माह, फाल्गुन माह, चैत्र माह आषाढ माह, व आसोज माह की शुक्ल सप्तमी से लेकर पूर्णिमा तक औ पर्युषणा के आठ दिन) को दौरान हरी सब्जी का त्याग करना चाहिये ।

हरी वनस्पति सजीव होने से पर्व-तिथि के दिन अपने लिये वनस्पति जीव व उसमें स्थित दूसरे जीवों की हिंसा न हो इस लिये पर्व-तिथि के दि हरी सब्जी का त्याग किया जाता है । सभी पर्व-तिथि में प्रत्ये श्रावक-श्राविका को हरी सब्जी का त्याग करना ही चाहिये ऐसा कोई आग्र नहीं है । अतः पर्व-तिथि की गिनती भी सापेक्ष है । अतः कोई श्राव श्राविका माह में पाँच पर्व-तिथि की आराधना करते हैं तो कोई बा पर्व-तिथि की आराधना करते हैं । संक्षेप में, पर्व-तिथि के दिनों में कम कम पाप व ज्यादा से ज्यादा आराधना करनी चाहिये यह इसका तात्पर्य ।

दूसरी बात प्रत्येक हरी सब्जी सजीव होती है । जबकि आटा, चावल दालें आदि सजीव नहीं होते हैं और गेंहूँ,जौ, मूँग, मोठ,चौला(बोडा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदड, चना, तुवर (अरहर) इत्यादि धान्य सजीव भी हो सकते हैं और निर्जीव भी हो सकते हैं क्योंकि उनकी धान्य के रूप में निष्पत्ति होने के बाद निश्चित समय तक ही वे सजीव रहते हैं, बाद में वे अपने आप ही निर्जीव हो जाते हैं । इसके बारे में *प्रवचनसारोद्धार* नामक ग्रंथ के धान्यानामबीजत्वम् द्वार में बताया है कि गेहूँ, जौ, शालिधान, जुआर, बाजरा इत्यादि धान्य कोठी में अच्छी तरह बंद करके ऊपर गोमय आदि से सील किया जाय तो वे ज्यादा से ज्यादा तीन साल तक सजीव रहते हैं । बाद में वे अचित्त / निर्जीव हो जाते हैं ।

उसी तरह तिल, मूँग, मसूर, मटर, उदड, चौला, कुलत्थ, अरहर (तुवर) सेम इत्यादि पाँच वर्ष के बाद निर्जीव हो जाते हैं । जबकि अलसी, कपासिया, कंगुँ, कॉदों के दानें, सरसों इत्यादि धान्य ज्यादा से ज्यादा सात साल तक सजीव रह सकते हैं । बाद में वे अवश्य निर्जीव हो जाते हैं।

ऊपर बताया गया समय ज्यादा से ज्यादा है । जबकि कम से कम समय तो सिर्फ अन्तर्मुहूर्त अर्थात् दो घडी (48 मिनिट्स) ही है अर्थात् उसी धान्य के दाणे में जीव उत्पन्न होने के बाद सिर्फ 48 मिनिट्स के पहले भी वह निर्जीव हो सकते हैं ।

इस प्रकार अन्य धान्य भी निर्जीव हो सकते हैं । अतः हरी सब्जी का इस्तेमाल करने में जितना पाप लगता है इतना पाप उसका त्याग करने से लगता नहीं है । पर्व-तिथि में हरी सब्जी का त्याग करने का एक ओर तार्किक व शास्त्रीय कारण यह है कि हरी सब्जी का त्याग करने से मनुष्य को उसके प्रति आसक्ति पैदा नहीं होती है । सामान्यतः हरी सब्जी व फल में सुके दलहन (द्विदल) की अपेक्षा ज्यादा मधुरता होती है अतः मनुष्य को सुके दलहन (द्विदल) के बजाय हरी सब्जी व फल का आहार करना ज्यादा प्रिय लगता है । यदि वह हररोज किया जाय तो मनुष्य को उसके प्रति गहरी आसक्ति पैदा हो जाती है, परिणामतः उसको उसमें पैदा होना पड़ता है क्योंकि क्रमवाद का नियम है कि जहाँ आसक्ति वहाँ उत्पत्ति ।

वास्तव में जो लोग शाकाहारी है उनको हरीसब्जी लेने की आवश्यकता नहीं है किन्तु जो लोग मांसाहारी है उनको ही हरी सब्जी लेने की विशेष आवश्यकता है क्योंकि उनके खुराक में मनुष्य के शरीर के लिये आवश्यक क्षार, विटामीन, कार्बोहाईड्रेट्स नहीं होते हैं उसी कारण से उन सब को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कब्जियत हो जाती है । वैद्यों के अनुभव में यही बात स्पष्ट हुई है । जबकि शाकाहारी मनुष्य प्रति दिन हरी सब्जी लेते होने से उनको ऐसी तकलीफ कम होती है ।

दूसरी बात, हरी सब्जी में लोह तत्त्व अधिकतम होता है । जबकि प्राणिज द्रव्य में बिल्कुल होता ही नहीं है । शाकाहारी मनुष्यों के शरीर में वह ज्यादा होने से हरी सब्जी प्रति दिन लेने की कोई आवश्यकता नहीं है और वह दलहन में होता ही है ।

आयुर्वेद की दृष्टि से विचार करने पर हरी सब्जी पित्तवर्धक है, जबकि दलहन (द्विदल) वायुकारक है । अतः हरी सब्जी ज्यादा लेने पर पित्त हो जाता है, वह न हो और शरीर में वात, पित्त व कफ का संतुलन अच्छा हो इस लिये हर तीन दिन में एक दिन हरी सब्जी का त्याग करना चाहिये । इसी कारण से प्रति तीन दिन पर एक पर्व-तिथि आती है और पक्ष के अन्त में चतुर्दशी-पूर्णिमा या चतुर्दशी-अमावास्या स्वरूप दो दो पर्व-तिथि संयुक्त आती है । इसका कारण यही है कि यदि सारे पक्ष में पित्त ज्यादा हो गया हो तो उसका संतुलन दो दिन हरी सब्जी का त्याग करने से हो पाता है ।

कार्तिक माह, फाल्गुन माह, चैत्र माह, आषाढ माह व आसोज माह की सुद सप्तमी से लेकर पूर्णिमा तक के दिनों को अट्ठाई कही जाती है । वस्तुतः यही समय ऋतुओं का सन्धिकाल है । इसी समय में शरीर में वात, पित्त व कफ की विषमता के कारण स्वास्थ्यहानि होती है । उसमें ज्यादा खराबा न हो इस लिये आयंबिल के तप द्वारा कफ व पित्त करने वाले पदार्थों का त्याग करना चाहिये । आयुर्वेद में कहा है कि *"वैद्यानां शारदी माता, पिता तु कुसुमाकरः"* वैद्यराजों के लिये शरद ऋतु माता समान और वसंत ऋतु पिता समान है क्योंकि इन ऋतुओं में ही लोगों का स्वास्थ्य बिगडता है और इससे डॉक्टर व वैद्यों को अच्छी आमदनी होती है ।

इस प्रकार धार्मिक, वैज्ञानिक, स्वास्थ्य व आयुर्वेद की दृष्टि से शाकाहारी हम सब को पर्व-तिथि के दिनों में हरी सब्जी का त्याग करना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

13

पानी : सचित्त और अचित्त : समस्या एवं समाधान

पानी सजीव है । उसका प्रत्येक अणु भी सजीव है । साथ-साथ वह दूसरे जीवों की उत्पत्ति का स्थान भी होने से उसमें बहुत से प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु-कीटाणु उत्पन्न होते हैं, जो अपने शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग पैदा हो सकते हैं । अतः स्वास्थ्य की दृष्टि से भी पानी उबालकर ही पीना चाहिये । वर्तमान में कहीं कहीं पानी को अचित्त / प्रासुक बनाने के लिये उसमें थोडी सी भस्म या चूना या शक्कर डाल देते हैं । यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से भस्म या चूना या शक्कर डालने से पानी अचित्त प्रासुक हो जाता है तथापि भस्म या शक्कर कितना डालना और डालने के बाद कितने समय में पानी अचित्त हो पाता है उसकी कोई जानकारी किसी भी शास्त्र से या कहीं से भी प्राप्त नहीं है । वास्तव में इस प्रकार अचित्त हुआ पानी सिर्फ साधु-साध्वी के लिये ही कल्प्य है क्योंकि उनके लिये किसी श्रावक-गृहस्थ भी पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति आदि सचित्त द्रव्यों की हिंसा करे तो उसका दोष उनको लगता है किन्तु सिर्फ साधु-साध्वी के लिये ही इस प्रकार भस्म आदि डालकर पानी अचित्त किया जाय तो वह पानी अचित्त होने के बावजूद भी साधु-साध्वी के लिये अकल्प्य/अनेषणीय है । प्राचीन काल में गौचरी गये हुए साधु-साध्वी को स्वाभाविकरूप से दाल या चावल को धोया हुआ पानी या आटे को चपाटी के लिये तैयार करने के बाद उसी बरतन का धोया हुआ पानी मिल जाय जिसमें किसी भी प्रकार के खाद्य पदार्थ का स्वाद न हो और वही पानी तृषा को समाप्त करने वाला हो तो वे अपने पात्र में ले लेते थे । किन्तु श्रावकों के लिये तो तपश्चर्या के दौरान सामान्यतया तीन बार उबला हुआ अचित्त पानी ही लेने का नियम है । ऊपर बतायी हुई वह प्राचीन जैन श्वेताम्बर परंपरा थी और वह भी शास्त्राधारित । वर्तमान में यह परंपरा जैन साधु-साध्वी के कुछ गच्छ, संप्रदाय या विभाग में आज भी चालू है । उनका भक्तवर्ग उनके लिये इस प्रकार भस्म आदि डालकर पानी को अचित्त करते हैं जो सर्वथा अनुचित है । खास तौर पर साधु-साध्वी के लिये ही बनाया हुआ इस प्रकार का अचित्त पानी लेने से अचित्त पानी लेने का मुख्य उद्देश ही खत्म हो जाता है । अतएव श्वेताम्बर मूर्तिपूजक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधु-साध्वी समुदाय में अब तीन बार उबला हुआ अचित्त पानी ही लिय जाता है । जिसे पक्का पानी भी कहा जाता है । जबकि सभ्य संस्कृत भाष में उसे अचित्त पानी और शास्त्रीय परिभाषा में इसे प्रासुक पानी कहा जात है ।

कुछ लोग ऐसी शंका करते हैं कि हौज में इकट्ठा किया हुआ बारि का मीठा पानी, कुँए का खारा पानी, नगरपालिका/ ग्रामपंचायत आदि द्वार वितरित क्लोरिनयुक्त पानी, शुद्ध किया हुआ गंगाजल, खनिज जल गंधकयुक्त कुंडों का गर्म पानी आदि सभी प्रकार के पानी को अचित्त कर के लिये क्या एक ही पदार्थ भस्म या चूना है वे मानते हैं कि भिन्न भि प्रकार के पानी को अचित्त करने के लिये भिन्न भिन्न पदार्थ होने चाहि किन्तु यह उनका भ्रम है ।

शास्त्र में सचित्त पृथ्वी, पानी आदि को अचित्त करने की दो प्रकार क प्रक्रियायें बतायी गई हैं । जब एक प्रकार की सचित्त मिट्टी दूसरे प्रका की सचित्त मिट्टी के संपर्क में आती है तब दोनों प्रकार की मिट्टी अचि हो जाती है । दोनों प्रकार की मिट्टी एक दूसरे के लिये स्वकायश बनती है और जब मिट्टी में पानी डाला जाता है तब वही मिट्टी व पान परस्पर परकायशस्त्र बनकर एक दूसरे को अचित्त करते हैं । यहाँ भस वनस्पतिकाय या पृथ्वीकाय है, जबकि चूना पृथ्वीकाय है । अतः किसी भ प्रकार का पानी भस्म या चूने से अचित्त हो सकता है ।

जैनधर्म के सुस्थापित नियमो में से एक नियम यह है कि सब को उबाल हुआ पानी ही पीना चाहिये । उसमें साधु-साध्वी और गृहस्थ जो तप करते उसको इस नियम में कोई छूट नहीं है । जैन जीवविज्ञान के अनुसार पान स्वयं सजीव है ।

वर्तमान में जैनदर्शन के किसी भी विद्वान/निष्णात/पंडित/तत्त्वज्ञ य सामान्य विज्ञानविद् से पूछा जाय कि जैन धर्म में पानी को उबालकर पी का विधान क्यों किया गया है, तो सभी एकसाथ कह देते हैं कि "कच्च पानी स्वयं सजीव है और उसमें भिन्न भिन्न प्रकार के जीवाणु भी होते जिससे शरीर में बहुत से रोग होने कि संभावनाएँ है । सचित्त पानी उसकी निरंतर उत्पत्ति चालू रहती है, जो पानी उबालने के बाद बंद ह जाती है । अतः पानी उबाल कर पीना चाहिये ।" यहाँ ऐसा प्रश्न किय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ाता है कि जैनदर्शन के अनुसार किसी भी प्राणी या व्यक्ति को अपनी शवृद्धि करने के लिये या वंशवृद्धि बंद करने के लिये प्रेरणा करना उचित नहीं है क्योंकि उसमें भी पूर्णतः अनेक दोषो की संभावना है । हमें तो सिर्फ दृष्टा बनकर निरपेक्ष भाव से, उदासीन भाव से देखना चाहिये । तो किसी भी जीव की वंशवृद्धि रोकने का हमें क्या अधिकार है ? इस प्रश्न का उत्तर देना हम सब के लिये मुश्किल है । *अर्थात् पानी उबालना हमारे लिये हिंसा* की *प्रवृत्ति ही है । चाहे वह अपने लिये हो या दूसरे के लिये । संक्षेप में* पानी उबालकर क्यों पीना चाहिये ? प्रश्न यथावत् ही रहता है । इस प्रश्न का उत्तर वर्तमान अनुसंधान के आधार पर इस प्रकार दिया जा सकता है । विज्ञान के अनुसार प्रत्येक प्रवाही में धनविद्युत् आवेशयुक्त व ऋणविद्युद् आवेशयुक्त अणु होते हैं । कुएँ, तालाब, नदी, बारिश इत्यादि के पानी में ... होते हैं , साथ-साथ उसमें ऋण विद्युत् आवेशयुक्त अणु ज्यादा होते हैं ऐसा पानी पीने से शरीर में ताजगी का अनुभव होता है किन्तु ऐसा पानी ...त् विकार पैदा करता है किन्तु जब उसे उबाला जाता है तब वह ...त तो हो ही जाता है किन्तु साथ-साथ उसमें स्थित ऋण विद्युद् आवेशयुक्त अणु तटस्थ हो जाते हैं । परिणामतः उबाला हुआ पानी शारीरिक व मानसिक विकार पैदा नहीं कर सकता है । अतएव साधु-साध्वी व तपश्चर्या करने वाले गृहस्थों को उबाला हुआ अचित्त पानी ही पीना चाहिये ।

इस बात के वैज्ञानिक सबूत के रूप में मैं कहना चाहता हूँ कि अमरिका जैसे विकसित देश में अभी अभी पिछले कुछ साल से वातानुकूलित ...लियों में वातावरण को धनविद्युद् आवेशमुक्त या ऋण विद्युद् आवेशयुक्त करने के विशिष्ट साधन ईजाद किये गये हैं और उसकी बहुत खपत भी है इसका मुख्य कारण यह है कि वातानुकूलित स्थानों में जहाँ हवा ठंडी की ... है वहाँ तनिक भी गर्मी नहीं लगती है तथापि वहाँ बैठकर काम करने वालों को काम करने की इच्छा नहीं होती है और उन लोगों में शारीरिक व मानसिक जड़ता पैदा हो जाती है । इस प्रकार जितना चाहे उतना काम नहीं होता है । उसके बारे में अनुसंधान करने पर पता चला कि वातानुकूलित स्थानों में धन विद्युद् आवेशयुक्त अणुओं की संख्या बहुत ... होती है, यदि उसे कम किया जाय या ऋण विद्युत् आवेशयुक्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुओं की संख्या बढायी जाय तो वातावरण ताजगीपूर्ण व स्फूर्तिदायक ब जाता है । इन अनुसंधानों के आधार पर आयोनाईजेशन मशीन बनायी गर्य है । यह यंत्र प्रति सैकंड अरबों की संख्या में ऋणविद्युद् आवेशयुक्त अ पैदा करके बाहर फेंकता है । बारिश के दिनों में हम अनुभव करते हैं कि उस समय हमें सिर्फ खा-पीकर सो जाने की इच्छा होती है, और किस काम में मन लगता नहीं है क्योंकि उस समय वातावरण में धनविद्यु आवेशयुक्त अणुओं की संख्या बहुत ही होती है । अतः गर्म किया हुआ पान सिर्फ जीवदया व आरोग्यविज्ञान की दृष्टि से ही नहीं अपि तु मन क प्रसन्नता के लिये भी काफी जरूरी है । ऊपर जो कुछ कहा गया वह पूर्ण वैज्ञानिक है ।

कुछ लोग ऐसा तर्क करते हैं कि धरती के ऊपर प्राप्त सभी प्रकार पानी में मिट्टी, भस्म इत्यादि पदार्थ होते ही हैं अतः वही पानी अचित्त होता है । तो उसे पुनः अचित्त क्यों करना ? शुद्ध पानी तो सि प्रयोगशाला में ही मिलता है । उनकी यह बात भी अवश्य विचारणीय किन्तु उसका भी समाधान है । इस प्रकार प्राप्त पानी अचित्त भी हो सकत है और सचित्त भी । किन्तु अपने पास ऐसा कोई विशिष्ट ज्ञान नहीं है अत हमें शत प्रतिशत यकीन नहीं है कि यह पानी अचित्त ही है । इस कारण कदाचित् वह पानी अचित्त होने पर भी हमें उसे पुनः अचित्त करना जरू है।

कुछ लोग बारिश के पानी की रसोईघर के बर्तन की सतह पर जमे बा के पानी के साथ तुलना करके कहते हैं कि बारिश का पानी यदि सजीव तो रसोईघर में बर्तन की सतह का पानी भी सजीव मानना चाहिये । कि उनकी यह बात भ्रम पैदा करने वाली है । ऊपर ऊपर से दोनों प्रक्रिया समान मालुम पडती है तथापि दोनों में काफी अन्तर है ।

विक्रम की बारहवीं शताब्दि में हुए श्री शांतिसूरिजी विरचित *जीवविचार* " नामक प्रकरण व "*जीवाभिगम* " इत्यादि आगम में बारिश पानी को सचित्त अप्काय बताया है । क्वचित् क्वचित् बारिश के पानी मछलियाँ भी पायी जाती है । अतः बारिश के पानी को अचित्त नहीं मा चाहिये ।

सामान्यतः श्रावक दिन में एक बार सुबह में पानी छान लेते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सचित्त होता है । पूर्ण गर्म किये हुये अर्थात् तीन बार उबले हुए अचित्त पानी के समय की मर्यादा श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परंपरा के " *प्रवचनसारोद्धार* " नामक ग्रंथ के अनुसार उष्णकाल (निदाघ) में पाँच प्रहर (15 घंटे) तक, शीतकाल में चार प्रहर (12 घंटे) तक व वर्षा ऋतु में तीन प्रहर (9 घंटे) तक की है । बाद में वह सचित्त हो जाता है । अतएव रसोईघर में गरम बर्तन के ढक्कन पर जमी हुई बाष्प से पानी में रूपांतरित जल अचित्त ही होता है क्योंकि उसमें ऊपर बताये हुए समय की मर्यादा से अधिक समय व्यतीत नहीं हुआ है । जबकि बारिश के पानी को पानी में परिवर्तन होने के बाद उपर्युक्त समय से ज्यादा समय व्यतीत हो गया होता है । अतएव शास्त्रकारों ने बारिश के पानी को सचित्त बताया है ।

संक्षेपमें, प्रत्येक साधु-साध्वी व श्रावक-श्राविका एवं आरोग्यप्रद जीवन जीने की इच्छावाले सबको तीन बार उबला हुआ अचित्त पानी ही पीना चाहिये ।

The Eastern spiritual traditions show their followers various ways of going beyond the ordinary experience of time and of freeing themselves from the chain of cause and effect—from the bondage of karma, as the Hindus and Buddhists say. It has therefore been said that Eastern mysticism is a liberation from time. In a way same may be said of relativistic physics.

Fritjof Capra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

14
जमींकन्द और बहुबीज

आजकल जैन समाज में बहुत से लोग पूछते हैं कि जमींकंद क्यों नहीं खाया जा सकता है ? उसके बारे में बार बार प्रश्न पूछते हैं और सब अपनी अपनी बुद्धि व क्षयोपशम के अनुसार प्रत्युत्तर देते हैं तथापि लोगों को संतोष नहीं होता है ।

प्रायः तीन चार साल पहले रीवा (मध्यप्रदेश) महाविद्यालय के रसायणशास्त्र के प्राध्यापक (प्रोफेसर) विज्ञानी डॉ. नंदलाल जैन मेरे पास आये थे । उन्होंने भी मुझे जमींकन्द के बारे में प्रश्न पूछे थे । उनके साथ निम्नोक्त बात हुई थी ।---

डॉ. नंदलाल जैन : कौन से जैनग्रंथ में कितने साल पहले लिखा गया है कि आलू नहीं खाना चाहिये ? उसका निषेध करने का कारण क्या है ?

मुनि नंदीघोषविजय : किसी भी जैनग्रंथ व आगम में जमींकन्द नहीं खाना चाहिये ऐसा कोई प्रमाण प्राप्त नहीं है । जैनग्रंथ व आगम में सिर्फ वनस्पतिकाय के प्रकार बताये गये हैं । 1. प्रत्येक वनस्पतिकाय और 2. साधारण वनस्पतिकाय । साधारण वनस्पतिकाय को अनंतकाय भी कहते हैं। जैस शास्त्रों में साधारण वनस्पतिकाय / अनंतकाय के लक्षण बताये गये हैं । और उसके कुछेक उस समय में प्रचलित उदाहरण स्वरूप वनस्पति के नाम बताये गये हैं । अतः शास्त्र में सभी प्रकार के अनंतकाय के नाम होने ही चाहिये ऐसा आग्रह रखना या शास्त्र में निर्दिष्ट अनंतकाय का ही निषेध करना और उससे भिन्न अनंतकाय को भक्ष्य मानना उचित नहीं है ।

डॉ. नंदलाल जैन : जमींकन्द में अनंत जीव हों तो सूक्ष्मदर्शक में अवश्य दिखाई देते । उदा. दही में बेक्टेरिया आदि ।

मुनि नंदीघोषविजय : बेक्टेरिया आदि बेइन्द्रिय जीव होने से वे दही से भिन्न हैं । अतः वे सूक्ष्मदर्शक में दिखाई पड़ते हैं । जबकि साधारण वनस्पतिकाय स्वयं सजीव हैं । अतः उसमें सूक्ष्मदर्शक यंत्र से जीव आत्मा को भिन्न रूप से देखने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है । क्या आत्मा शरीर से भिन्न देखी जा सकती है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनंतकाय अर्थात् उसमें अनंत आत्मायें होती है । अतः उसका शास्त्र में स्पष्टरूप से निषेध किया न होने पर भी उसका भक्षण नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसका भोजन करने से अनंत जीवों की हिंसा का पाप लगता है ।

सामान्यतः बहुत सी वनस्पतियों की जड़ों के विकार (Modification of Root) जिसको लोग जमींकन्द कहते हैं, वह अनंतकाय होने से उसका भक्षण न करने का नियम लिया जाता है किन्तु जमीन में होने वाली सभी वनस्पति अनंतकाय नहीं होती है । उदा. मूँगफली । मूँगफली के ऊपर के छिलके तंतुयुक्त होते हैं, उसका प्रत्येक अंग नया पौधा पैदा कर सकता नहीं है और उसमें अनंतकाय के कोई भी लक्षण मौजूद नहीं हैं । उसी तरह सभी वनस्पति के बाहर के आये हुए अंग तना, फूल, फल व पत्र आदि प्रत्येक वनस्पतिकाय नहीं होते हैं । अतः वह जमीन के बाहर होने पर भी अभक्ष्य ही हैं ।

डॉ. नंदलाल जैन : आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कंध में लहसुन का पाठ आता है उसका क्या समाधान ?

मुनि नंदीघोषविजय : वह पाठ मैंने भी पढा है । उसमें और श्री दशवैकालिक सूत्र में साधु को गौचरी में क्या कल्प्य है और क्या अकल्प्य है इसके बारे में स्पष्ट निर्देश किया गया है । उसमें स्पष्ट रूप से बताया है कि साधु को *प्रासुक* आहार व पानी कल्प्य है । यहाँ *प्रासुक* शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । *प्रासुक* का अर्थ क्या ?

डॉ. नंदलाल जैन : प्रासुक अर्थात् निर्जीव और कोई भी वनस्पति या धान्य अग्नि से पक जाने बाद निर्जीव हो जाता है तो आलू, प्याज, लहसुन आदि रसोई के दौरान निर्जीव हो जाने के बाद क्यों नहीं खाया जाय ?

मुनि नंदीघोषविजय : प्रासुक अर्थात् निर्जीव तो सही किन्तु सिर्फ होने से वह भक्ष्य नहीं हो जाता है । वह निर्दोष भी होना चाहिये ।

डॉ. नंदलाल जैन : निर्दोष का मतलब क्या ?

मुनि नंदीघोषविजय : प्रासुक अर्थात् विशेषतः अपने ही लिय वह निर्जीव किया गया न हो । आलू, प्याज, लहसुन आदि पकाने के बाद या आलू की चिप्स सुखाने के बाद निर्जीव होने के बावजूद भी वह निर्दोष नहीं है ।

डॉ. नंदलाल जैन : कैसे ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि नंदीघोषविजय : अदरक सूख जाने के बाद उसे सूंठी कहते जब वह हरा होता है तब अनंतकाय होता है किन्तु सुखा जाने के बा अनंतकाय नहीं रह पाता । उसी प्रकार आलू की चिप्स सूख जाने के अनंतकाय नहीं है तथापि दोनों की सुखाने की प्रक्रिया में काफी अन्तर अदरक को सूर्यप्रकाश में रखने पर अपने आप ही सूख जाती है ज आलू को सूर्यप्रकाश में रखने पर वह नहीं सुखेगा किन्तु उसमें सडन लगेगी । आलू को सुखाने के लिये अनिवार्य रूप से उसके टुकड़े पडेंगे । और किसी भी वनस्पति को निर्जीव करने के दो रास्ते हैं अग्नि से पकाना या 2. छूरी से काटना । अर्थात् आलू के अनंत जीव अपने खुराक के लिये ही हिंसा करना, छूरी से काटना या अग्नि से प जरूरी होने से वह निर्जीव होने पर भी निर्दोष नहीं है । अतः उ खुराक में उपयोग नहीं करना चाहिये ।

डॉ. नंदलाल जैन : आलू आदि में अनंत जीव तो देखे नहीं जा वह अनंतकाय कैसे ?

मुनि नंदीघोषविजय : आप अनंतकाय की क्या व्याख्या करते हैं ?

डॉ. नंदलाल जैन : अनंतकाय अर्थात् एक ही शरीर में अनंत जीव होना ।

मुनि नंदीघोषविजय : बराबर है । एक ही शरीर में अनंत जीव अ का होना अनंतकाय है । आप जो व्याख्या करते हैं उसे ही अच्छी समझें । शास्त्र में कहा है कि साधारण वनस्पतिकाय में अनंत आत्म एक ही शरीर होता है और उस अनंत आत्मा के जन्म-मरण एक ही होते हैं । इतना ही नहीं अपितु उनका आहार-पानी व श्वासोच्छ्वास भी होता है । अतः आप प्याज की एक कोशिका (Cell) या आलू का सूक्ष्म कण जो सूक्ष्मदर्शक (Microscope) में देखते हैं वह तो अनंत का सिर्फ शरीर ही है । उसी कोशिका में ही अनंत आत्मायें होती हैं हम कभी भी शरीर से आत्मा को पृथक् देख नहीं सकते हैं । हम देखते हैं वह सिर्फ शरीर ही है । उसी एक शरीर में ही अनंत आ होती हैं । क्या आत्मा शरीर से भिन्न दिखाई दे सकती है ?

डॉ. नंदलाल जैन : क्या यह कल्पना नहीं है ?

मुनि नंदीघोषविजय : नहीं, हम किसी भी साधन से अनंत आत्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देख नहीं सकते, सिर्फ उसी कारण से इसे कल्पना नहीं कही जा सकती । केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा ने केवलज्ञान से जो कुछ देखा है उसका ही निरूपण शास्त्रों में किया है । अतः वह कल्पना नहीं है ।

आप रसायणशास्त्र के प्राध्यापक हैं । क्या आपने इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, क्वार्क इत्यादि सूक्ष्म सब-ऍटमिक पार्टिकल्स देखे हैं ? इन कणों को कितने विज्ञानी ने देखे हैं ?

डॉ. नंदलाल जैन : नहीं, मैंने ये सूक्ष्म कण नहीं देखे हैं और इन सब को देखने वाले विज्ञानी बहुत ही कम होंगे ।

मुनि नंदीघोषविजय : अच्छा, हम किसी ने ये सूक्ष्म कण नहीं देखे हैं तथापि उसके अस्तित्व का स्वीकार करते हैं । सामान्य मनुष्य ऐसे विज्ञानी ने देखे हुए सूक्ष्म कण का हम स्वीकार करते हैं और केवलज्ञानी तीर्थंकर परमात्मा ने देखे हुए एक ही शरीर में रहने वाली अनंत आत्मा को हम कल्पना कहें वह उचित नहीं है ।

डॉ. नंदलाल जैन : दूसरी बात आलू में यदि अनंत जीव हों तो उसी आलू के अर्क या मावे में अन्य प्रकार के जीवाणु पैदा किये जाते हैं, जिसे कल्चर (Culture) कहते हैं, वह शुद्ध अर्थात् उसमें सिर्फ उसी प्रकार के ही जीवाणु पाये जाते हैं ऐसा क्यों ? यदि आलू अनंतकाय है तो वे जीव भी उसमें दिखाई देते, किन्तु प्रयोग में ऐसा दिखाई नहीं पड़ता । इसका क्या कारण ?

मुनि नंदीघोषविजय : आपकी बात सही है । जब आप कल्चर करने के लिये आलू आदि के अर्क या मावा आदि लेते हैं तब वह भी सजीव होता है । उसके प्रत्येक कण में अनंत आत्मा होती है । किन्तु अन्य जीवाणु उनका सिर्फ स्टार्च के रूप में खुराक में उपयोग करते हैं । अतः कल्चर में जो जीवाणु पैदा किये जाते हैं उसमें उसके अलावा अन्य कोई जीव दिखाई नहीं पड़ते हैं ।

डॉ. नंदलाल जैन : जहाँ जीवों का समूह है वहाँ उसके अनुकूल परिस्थिति समाप्त की जाय तो वे मर जाते हैं और उनकी मृत्यु के बाद आलू आदि में सड़न-गलन होने लगेगी और वे बहुत लम्बे अरसों तक अच्छे नहीं रह पायेंगे किन्तु जमींकन्द बहुत लम्बे अरसों तक ताजा रहते हैं, इसका क्या कारण ? यदि उसमें जीव हो तो वे जमीन के नीचे ही सुरक्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रह सकते हैं । उसे मिट्टी से बाहर निकालने पर उनकी मृत्यु हो जायेगी और वे सड़ने लगेंगे ।

मुनि नंदीघोषविजय : जो ऐसा मानते हैं उनकी यह मान्यता बिल्कुल असत्य है । उसे निर्जीव करने का सिर्फ एक ही उपाय है । छरी आदि से काटकर अग्नि से पकाना । दूसरी बात सजीव पदार्थ में से उसकी आत्मा निकल जाने के बाद अर्थात् मृत्यु हो जाने के बाद उसमे सडन हो ही जाती है ऐसा कोई नियम नहीं है । आधुनिक युग में और प्राचीन काल में मृतक को लम्बे समय तक रखने के लिये शुष्कीकरण की पद्धति का प्रयोग किया जाता था । वैसे जमींकन्द को सुखाकर रख दिया जाय तो उसमें सडन होने की कोई संभावना नहीं रहती । उदा. अदरक में से सूंठ ।

डॉ. नंदलाल जैन : यदि हम जमींकन्द नहीं खाते तो सूंठ, हल्दी क्यों ली जाती है ?

मुनि नंदीघोषविजय : अदरक, हल्दी हरे होते हैं तब अनंतकाय होते हैं किन्तु वे अपने आप सूख जाने के बाद अनंतकाय नहीं रह पाते हैं । सूर्यप्रकाश में वे स्वयमेव सूख जाते हैं । उसके लिये छुरी से उसके टुकड़े करने नहीं पड़ते हैं । दूसरी बात सूंठ, हल्दी औषध हैं । बहुत ही अल्प मात्रा में सारे दिन में शायद ही एक-आध चमच उसका उपयोग किया जाता है । जबकि आलू खुराक है । केवल एक ही व्यक्ति शेर-देढ शेर खा जाता है । अतः प्राचीन आचार्यों द्वारा सूंठ, हल्दी आचीर्ण है । जबकि आलू आदि की चिप्स अनाचीर्ण है । अतः उसका उपयोग नहीं करना चाहिये ।

डॉ. नंदलाल जैन : जमींकम्द से भिन्न वनस्पति में कीड़ा, ढोला, पिल्लू आदि पाये जाते हैं । जबकि जमींकन्द को काटने पर वे अंदर से साफ सुथरे दिखाई पड़ते हैं ।

मुनि नंदीघोषविजय : शास्त्रकारों ने अनंतकाय की यही पहचान दी है । अनंतकाय के टुकड़े करने पर उसके व्यवस्थित सप्रमाण टुकड़े होते हैं । उसमें रेषा, ग्रंथि आदि नहीं दिखाई पड़ते हैं, तथापि उसमें सूक्ष्म जीव तो हैं ही ।

डॉ. नंदलाल जैन : आलू का नाम अपने प्राचीन शास्त्रों में कहीं नहीं पाया जाता है क्योंकि आलू भारत की पैदाइश नहीं है । सर वॉल्टर रयाले ई. स. 1586 में उसे दक्षिण अमरिका (ब्राजिल) से विलायत ले आये बाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में ई. स. 1615 के आसपास में आलू भारत लाया गया । अतः आलू अनंतकाय है ऐसा कथन केवली का नहीं है किन्तु किसी छद्मस्थ की छोड़ी हुई गप है ।

मुनि नंदीघोषविजय : नहीं, यह बात सही नहीं है । शास्त्रों में सभी प्रकार के अनंतकाय के नामों का उल्लेख संभवित नहीं है किन्तु अनंतकाय के लक्षण ही शास्त्र में पाये जाते हैं । उसी लक्षण के आधार पर हमारे प्राचीन आचार्यों ने आलू आदि को अनंतकाय बताया है । सेब (सफरजन) आदि भी भारत की पैदाइश नहीं है और शास्त्र में कहीं उसका नाम भी नहीं है तथापि अपने प्राचीन/अर्वाचीन किसी भी आचार्य ने उसका निषेध नहीं किया है ।

डॉ. नंदलाल जैन : आपके साथ इस चर्चा से बहुत साल से मेरे मन में आलू इत्यादि के बारे में जो शंकाएँ थी उसका अच्छा समाधान हुआ ।

बहुबीज के बारे में भी लोग बार बार प्रश्न पूछते हैं । उसके बारे में इसरो के विज्ञानी डॉ रजनीभाई दोशी के साथ निम्नोक्त बात हुई ।

डॉ. रजनीभाई दोशी : बैगन, अंजीर, अमरूद आदि में बहुबीज हैं अतः वह अभक्ष्य है तो ककड़ी, भिंडी, आरिया आदि बहुबीज नहीं है ?

मुनि नंदीघोषविजय : " धर्मसंग्रह " नामक ग्रंथ के अनुसार बहुबीज वनस्पति के बीज के ऊपर पारदर्शी सूक्ष्म अस्तर नहीं होता है । जबकि ककड़ी इत्यादि के बीज के ऊपर पारदर्शी सूक्ष्म अस्तर होता है । अतः वह बहुबीज नहीं है । दूसरी बात उसके बीज के प्रकार पर भी उसका आधार है । जिन वनस्पति के बीज रसोई के दौरान निर्जीव हो जाते हो वही वनस्पति भक्ष्य है । जबकि जिन वनस्पति के बीज रसोई के दौरान निर्जीव नहीं होते हैं ऐसी वनस्पति अभक्ष्य है, उदा. अमरूद आदि । जबकि अंजीर आदि तो कच्चे ही खाये जाते हैं । अतः वे अभक्ष्य हैं ।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार बैगन में विषमय द्रव्य ज्यादा प्रमाण में है अतः वह अभक्ष्य है ।

जैन परंपरा में *"यतना (जयणा)"* ही मुख्य धर्म है । दशवैकालिक सूत्र में जब शिष्य को कहा गया कि चलने से हिंसा होती है, खड़े रहने से, बैठने से, सोने से, बोलने से, अरे ! आहार करने से भी हिंसा होती है तो शिष्य प्रश्न पूछता है कि यदि चलने से, खड़े रहने से बैठने से, सोने से,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोलने से व आहार करने से भी हिंसा होती है तो हमें कैसे जीवन व्यतीत करना चाहिये ?

कहं चरे ? कहं चिट्ठे ? कहमासे ? कहं सए ?
कहं भुंजंतो ? भासंतो ? पावकम्मं न बंधइ ?
दशवैकालिक सूत्र, अध्ययन - 4, गाथा - 7

इस प्रश्न के उत्तर में गुरु कहते है :--

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे, जयं सए ।
जयं भुंजंतो, भासंतो, पावकम्मं न बंधइ ।।
दशवैकैलिक सूत्र, अध्ययन - 4, गाथा - 8

जयणापूर्वक चलना, जयणापूर्वक खडे रहना, जयणापूर्वक बैठना, जयणापूर्वक सोना, बोलना और आहार करना जिससे पाप कर्म का अनुबंध न हो ।

इस प्रकार जैनधर्म में जयणा ही मुख्य है । अतः कम से कम सावद्य व्यापार द्वारा जीवन निर्वाह करने की सूचना शास्त्रकारों ने दी है । जो जयणा के अधिकतम उपयोग से ही सफल हो सकती है ।

They realize that good and bad, pleasure and pain, life and death, are not absolute experiences belonging to different categories, but are merely two sides of the same reality; extreme parts of a single whole. The awareness that all opposites are polar, and thus a unity, is seen as one of the highest aims of man in the spiritual traditions of the East. *Frtjof Capra*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

15

षड् आवश्यक : एक वैज्ञानिक विश्लेषण

शाकिनी महत्तरासुनु भगवान हरिभद्रसूरिजी महाराज ने " योगविंशिका " की प्रथम गाथा में कहा है कि *" मोक्खेण जोयणाओ जोगो "* जो प्रक्रिया आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़े उसीको योग कहा जाता है ।[1] त्रिशलानंदन काश्यपगोत्रीय श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी ने सर्व जीवों के हित के लिये अनेक प्रकार की यौगिक प्रक्रियाओं का निरूपण किया है । उसमें छः आवश्यक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । जैनदर्शन की एक विशेषता यही है कि उसकी कोई भी क्रिया पूर्णतः सप्रयोजन, सहेतुक व वैज्ञानिक होती है और उसमें आत्मा को कर्म से मुक्त करके मोक्ष देने की अचिन्त्य शक्ति होती है ।

छः आवश्यक साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं के लिये एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । यही छः आवश्यक प्रतिक्रमण में आते हैं और प्रतिक्रमण की यही विशिष्ट विधि श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के समय से चली आती है ।[2] प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ प्रभु व अंतिम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी के समय में देवसि, राई, पक्खी, चौमासी एवं सांवत्सरिक ऐसे पाँच प्रकार के प्रतिक्रमण है । जबकि श्री अजितनाथ आदि बाईस तीर्थंकरों के समय में सिर्फ देवसि और राई दो ही प्रकार के प्रतिक्रमण थे ।[3] अर्थात् उनके समय में भी छः आवश्यक तो थे ही ।

छः आवश्यक में प्रतिक्रमण सबसे महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है क्योंकि उसमें सभी आवश्यक का समावेश होता है । इस विधि मूल सूत्र द्वादशांगी के रचयिता, तीर्थंकर परमात्मा के मुख्य शिष्य गणधरों ने रचे हैं ऐसी एक मान्यता परंपरा से चली आती है ।[4] गणधर भगवंतों ने द्वादशांगी की रचना अर्धमागधी भाषा में की थी और उसके उद्‌गम स्वरूप उपदेश चरम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी ने अर्धमागधी भाषा में ही दिया था । श्री महावीरस्वामी ने उपदेश के लिये समग्र भारतवर्ष में प्रचलित व प्रयुक्त विभिन्न व विद्वद्‌मान्य संस्कृत भाषा को छोडकर अर्धमागधी भाषा को क्यों पसंद किया ? उसके प्रत्युत्तर में सामान्यतः ऐसा कहा जाता है कि लोग अच्छी तरह समझ सकें इस लिये प्रभु ने लोकभाषा स्वरूप अर्धमागधी भाषा में उपदेश दिया किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह बात पूर्णतः सही नहीं है क्योंकि प्रत्येक तीर्थंकर परमात्मा की वाणी
एक अतिशय विशिष्टता यह है कि प्रभु की वाणी को कोई भी मनुष्य, स
व पुरुष अपनी अपनी भाषा में समझ सकता है, इतना ही नहीं अपितु प
पक्षी आदि तिर्यंच भी प्रभु की वाणी को अपनी अपनी भाषा में समझ स
हैं ।[5] श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के समय में समग्र भारतवर्ष
विभिन्न लोकभाषाएँ प्रचलित थी । उसमें से अर्धमागधी में ही उपदेश
का व गणधरों द्वारा उसी भाषा में ही सूत्र रचना करने का मुख्य का
वैज्ञानिक है ।

इस प्रकार छः आवश्यक करने की योग्यता अल्प कषायता और उस
प्रयोजन राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदि कषायों के परिणाम
करने का है । उसमें वाणी व वाणी में प्रयुक्त शब्द और वर्ण एक महत्त्व
कारण है । क्रोधादि कषाय से अभिभूत मनुष्य की वाणी अत्यंत कठोर
कर्कश होती है । जबकि छः आवश्यक द्वारा कषायजय करने को तत्पर
मनुष्य की वाणी अत्यंत मृदु व कोमल होनी चाहिये ।

ध्वनि/शब्द भी पौद्गलिक अर्थात् पुद्गल द्रव्य के सूक्ष्म अंश स्व
परमाणु से निष्पन्न है और वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पुद्गल द्रव्य का लक्षण है
अतः प्रत्येक शब्द या ध्वनि में वे होते ही हैं । किन्तु मृदु व कोमल स्पर्श
ध्वनि में शुभ वर्ण, गंध, रस व स्पर्श होते हैं । अशुभ वर्ण आदि युक्त ध्व
और शब्द उसका प्रयोग करने वाले तथा उसको सुनने वालों के मन
अशुभभाव पैदा करते हैं । परिणामतः प्रयोक्ता व श्रोता दोनों अशुभ कर्म
करते हैं । जबकि छः आवश्यक की परम पवित्र क्रिया मुख्य रूप से
अशुभ दोनों प्रकार के कर्मों का क्षय करने के लिये की जाती है । अतः
क्रिया करने वाला कदाचित् कर्मनिर्जरा न कर पाये तो भी अशुभ कर्म
बंध नहीं होना चाहिये ऐसे पारमार्थिक प्रयोजन से गणधरों ने, स्वयं संस्
भाषा के प्रकांड पंडित और चौदह विद्या के पारगामी होने के बावजूद
आगम-द्वादशांगी और आवश्यक सूत्र को अर्धमागधी भाषा में सूत्रबद्ध कि

संस्कृतभाषा और संस्कृतभाषा से निष्पन्न भारतीय भाषाओं
सामान्यतया 12 या 14 स्वर और 33 व्यंजन आते हैं । किन्तु सभी भाषा
में इन सभी स्वर और व्यंजनों का प्रयोग नहीं होता है । उसमें से कु
भाषाओं में और खास तौर पर अर्धमागधी भाषा में अत्यंत कठोर व क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वर-व्यंजन, संयुक्ताक्षरों का प्रयोग नहीं होता है । अर्धमागधी भाषा में शब्द अत्यंत मृदु व कोमल होते हैं । इन शब्दों की ध्वनि भी प्रयोक्ता और श्रोता के मन/अध्यवसाय में अनोखा परिवर्तन करने में समर्थ होती है । अध्यवसाय के शुद्धिकरण से हमारे आभामंडल का भी शुद्धिकरण होता है और उसके द्वारा शारीरिक, मानसिक, भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति होती है । अतएव हमारे आगम व सूत्रों को अपने पूर्वकालीन आचार्य/महापुरुष मंत्रस्वरूप मानते थे । जैसे विद्या या मंत्र का अर्थ बिना जाने भी उसी विद्या या मंत्र का पाठ या जाप करने से इष्ट कार्यसिद्धि होती है वैसे ही सूत्रों के अर्थ बिना जाने भी मूल शब्दों का श्रवण भी प्रयोक्ता और श्रोता दोनों का कल्याण करता है । अतएव पर्युषणा पर्व में अंतिम दिन श्री कल्पसूत्र मूल अर्थात् श्री बारसा सूत्र का साद्यंत श्रवण किया जाता है और उसमें भी प्रत्येक साधु साध्वी के लिये इसी बारसा सूत्र का श्रवण अत्यावश्यक माना जाता है ।

"*नमो अरिहंताणं*" का उच्चारण करते समय जो भाव आते हैं वे भाव कभी भी अरिहंत परमात्मा को नमस्कार हो का उच्चारणण करते समय नहीं आयेगा । नमस्कार महामंत्र आदि प्रतिक्रमण के सभी सूत्र मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के महान साधन है । अमरिका में जो जैन नहीं है वैसे बहुत से अमरिकन मानसिक शांति के लिये नमस्कार महामंत्र इत्यादि का उच्चारणणपूर्वक जाप करते हैं और मानसिक शांति प्राप्त करते हैं ।

नौ साल पहले इंग्लैण्ड की सुप्रसिद्ध प्रकाशन संस्था Themes Hudson द्वारा प्रकाशित किताब "Yantra" मेरे पढने में आयी । उसमें उसके लेखक श्री मधु खन्ना ने बताया है कि रोनॉल्ड नामेथ (Ronald Nameth) नामक विज्ञानी ने ब्राह्मणों के " श्रीसुक्त " के ध्वनि को Tonoscope नामक यंत्र में से प्रसारित करने पर उसके स्क्रीन पर श्रीयंत्र की आकृति प्राप्त होती है ।[7] यदि श्रीसुक्त के स्थान पर उसके अर्थ के ध्वनि को या श्रीसुक्त के शब्दों के क्रम में परिवर्तन करके उसके ध्वनि को इसी यंत्र में से पसार करने पर क्या श्रीयंत्र की आकृति प्राप्त हो सकेगी ? अर्थात् श्री द्वादशांगी के रचयिता चौदह पूर्वधर गणधर भगवंतों ने जो सूत्र रचना की है वह पूर्णतः वैज्ञानिक है और सर्व जीवों का हित करने वाली मंत्रस्वरूप है । अतएव कदाचित् नमस्कार महामंत्र के मूल स्वरूप को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः स्वरूप संस्कृत में संक्षेप करने वाले प्रकांड तार्किक व कवि श्रीसिद्धसेन दिवाकर को उनके गुरु श्री वृद्धवादिसूरिजी ने आगमसूत्रों को संस्कृत में रूपांतरित करने का विचार करने के लिये कठिन प्रायश्चित्त देकर थोड़े समय के लिये संघ बाहर निकाल दिया था ।

इन बातों से पता चलता है कि प्रतिक्रमण के सूत्रों में कोई भी परिवर्तन करना उसके महत्त्व व उसी के प्रभाव का नाश करने वाला होता है । खुद तीर्थंकर परमात्मा भी दीक्षा के समय "*करेमि भंते* " सूत्र का पाठ करते हैं[8] किन्तु उसके अर्थ का उच्चारण नहीं करते हैं और उसी प्रकार मूल सूत्र का आदर करते हैं ।

यहाँ सिर्फ मूल शब्दों का ही महत्त्व बताया है किन्तु शास्त्रकारों ने तो मूल शब्दों के साथ-साथ उसके अर्थ को भी इतना महत्त्व दिया है क्योंकि बिना अर्थ के भावशुद्धि - अध्यवसायशुद्धि सहजता से नहीं हो पाती है । अतएव शास्त्रकारों ने व्यंजन, अर्थ और तदुभय अर्थात् व्यंजन और अर्थ दोनों का ज्ञानाचार में समावेश किया है ।[9]

संवत्सरी प्रतिक्रमण अर्थात् पर्युषणा की आराधना श्रमण भगवान श्री महावीर के समय से अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है । हालाँकि इसी प्रतिक्रमण की विधि में प्रति शताब्दि या संप्रदाय भेद से थोडी सी भिन्नता हुई है । इस विधि में प्रायश्चित्त व कर्म क्षय के कायोत्सर्ग, स्तवन, सज्झाय, (स्वाध्याय) नित्य क्रम में आने के कारण प्रतिक्रमण की विधि के साथ जोड़ दिया गया हैं । इतना भाग प्रक्षिप्त है किन्तु मूलविधि में से कुछ भी कम नहीं किया गया है । श्री कल्पसूत्र (बारसासूत्र) में सामाचारी में श्री भद्रबाहुस्वामी ने स्वयं कहा है कि जिस प्रकार तीर्थंकर परमात्मा ने चातुर्मास के पचासवें दिन पर्युषणा की आराधना की थी उसी प्रकार गणधर भगवंतों ने भी चातुर्मास के पचासवें दिन पर्युषणा किया । उसी प्रकार स्थविर मुनियों ने भी पर्युषणा किया । ठीक उसी प्रकार हम आचार्य, उपाध्याय आज भी चातुर्मास के पचासवें दिन पर्युषणा करते हैं किन्तु भाद्र. शुक्ल चतुर्थी या पंचमी का उल्लंघन नहीं करना चाहिये ।

जहा णं समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेइ, तहा णं गणहरावि वासाणं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति । जहा णं गणहरावि वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं गणहरसीसावि वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहा णं गणहरसीसावि वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं थेरावि वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहा णं थेरावि वासाणं सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसविंति तहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणे निग्गंथा विहरंति एएवि य णं वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहा णं जे इमे अज्जत्ताए समणे निग्गंथा वासाणं जाव पज्जोसविंति, तहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति । जहा णं अम्हं पि आयरिया उवज्झाया वासाणं जाव पज्जोसविंति तहा णं अम्हे वि सवीसइ राए मासे विइक्कंते वासावासं पज्जोसवेमो । अंतरावि य से कप्पइ पज्जोसवित्तए । नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए ।

[कल्पसूत्र सामाचारी सूत्र-३, ४, ५, ६, ७, ८] [16]

पर्युषणा अर्थात् सांवत्सरिक वार्षिक प्रतिक्रमण अर्थात् अपनी सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की विधि श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी के समय से चली आती है । प्रतिक्रमण की विधि में कुछ सूत्र बार बार आते हैं । अतः विधि व उसके प्रयोजन संबंधित रहस्य से अज्ञात आराधकों के मन में प्रश्न पैदा होता है कि यही सूत्र तो पहले आ गया है तो यहाँ वह पुनः क्यों रखना चाहिये ? वास्तव में किसी भी शब्द या सूत्र का जब हम फिर से प्रयोग करते हैं तब पूर्व का जो संदर्भ था उससे भिन्न संदर्भ यहाँ होता है । उसी कारण से जितनी बार उसी शब्द या सूत्र का प्रयोग होता है उतनी बार उसकी भिन्न भिन्न विभावना (Concept) व तात्पर्य होता है । उदा. धर्म शब्द के विभिन्न अर्थ है । अतः यह स्वाभाविक है कि भिन्न भिन्न वाक्य या प्रसंग के संदर्भ में उसके भिन्न भिन्न अर्थ होते हों । तथापि एक ही अर्थ में एक ही ग्रंथ में विभिन्न स्थान पर प्रयुक्त धर्म शब्द की विभावना सभी स्थान पर समान नहीं होती है । उसमें भी थोड़ी थोड़ी भिन्नता होती ही है । उसी प्रकार सामायिक, प्रतिक्रमण आदि की विधि में विभिन्न स्थान पर प्रयुक्त एक ही सूत्र की विभिन्न स्थान के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ में विभिन्न विभावना, अर्थ व प्रयोजन होते हैं । अतः वही सूत्र पहले आ गया होने पर भी, उसी स्थान पर उसका विशेष महत्त्व होता है ।

प्रतिक्रमण आदि विधि में *"सुगुरु वांदणा"* वंदनक सूत्र हमेशा दो दो बार आता है । उसके बारे में सभी को प्रश्न होता है किन्तु *"वांदणां"* सूत्र गुरु भगवंत के प्रति अपने विय की अभिव्यक्ति के लिये है और गुरुदेव अपने सब के नजदीक के उपकारी है क्योंकि उन्होंने प्रभु की वाणी को अपने तक पहुँचाकर देव-गुरु व धर्म का तात्त्विक स्वरूप हमें समझाया है । अतः गुरु के प्रति अत्यंत पूज्यभाव बताने के लिये *"वांदणा"* सूत्र दो बार बोला जाता है ।

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदनक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान इन छः आवश्यकों का क्रम भी बहुत विचारपूर्वक रखा गया है । राग-द्वेष के परिणाम बिना सम-शिथिल किये श्री जिनेश्वर प्रभु या श्री जिनेश्वर प्रभु द्वारा प्ररूपित धर्म या तत्त्वों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती है । अतः राग-द्वेष के परिणाम को सम करने के लिये *"सामायिक"* आवश्यक सर्व प्रथम कहा है । शास्त्रों में सम्यक्त्व को भी सामायिक कहा है ।

सम्यक्त्व की प्राप्ति के बाद प्रभु व प्रभु के वचन के प्रति श्रद्धा, अहोभाव व पूज्यभाव पैदा होता है । परिणामतः उनके प्रति सहजता से नमस्कार हो जाता है । अतः सामायिक के बाद तुरंत *चतुर्विंशतिस्तव* रखा है ।

तीर्थंकर परमात्मा के बाद तुरंत गुरु का स्थान है । अतः उनके प्रति विन.-भक्ति-बहुमान व्यक्त करने के लिये वंदनक आवश्यक रखा हैं तथा पाप से पीछेहठ करने की प्रक्रिया स्वरूप प्रतिक्रमण हमेशा गुरु की समक्ष, गुरु की साक्षी में करना होता है । अतः इस क्रिया के पूर्व अवश्य वंदन करना चाहिये । अतः प्रतिक्रमण के पूर्व *"वंदनक"* आवश्यक रखा है ।

प्रतिक्रमण आवश्यक में गुरु की समक्ष भूतकाल में किये गये पापों को अपराध स्वरूप में स्वीकार के पश्चात् गुरु भगवंत उन पापों के प्रायश्चित्त के रूप में तप, जप, क्रिया, अनुष्ठान करने को कहते हैं । उसके प्रतीक स्वरूप दैनिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक या सांवत्सरिक प्रायश्चित्त के रूप में अनुक्रम से पचास श्वासोच्छ्वास प्रमाण दो लोगस्स, तीनसौ श्वासोच्छ्वास प्रमाण बारह लोगस्स, पाँचसौ श्वासोच्छ्वास प्रमाण बीस लोगस्स और एक हजार आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण चालीस लोगस्स व एक नवकार का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायोत्सर्ग किया जाता है । ध्यानस्वरूप आभ्यंतर तप अग्नि समान है, उससे पाप क्रम जलकर भस्म हो जाते हैं । किन्तु कायोत्सर्ग उससे भी बढिया स्थिति पैदा करता है । कायोत्सर्ग सर्व प्रकार के बाह्य-आभ्यंतर तप में सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि कायोत्सर्ग से आत्मा का शरीर से संबंध छूट जाता है । ऐसी उत्कृष्ट स्थिति का निर्माण बिना कायोत्सर्ग संभव नहीं है ।

भूतकाल में हुए पापों का मिथ्यादुष्कृत देकर उसके लिये प्रायश्चित्त स्वरूप में कायोत्सर्ग रूप आभ्यंतर तप करने के पश्चात् वह पाप भविष्य में पुनः न हो उसके लिये प्रत्याख्यान करना आवश्यक है । अतः सबके अन्त में *प्रत्याख्यान* आवश्यक रखा है ।

इस प्रकार छः आवश्यक का क्रम भी पूर्णतः वैज्ञानिक है और आत्मा के गुणों को उसी क्रम से प्राप्ति कराने वाला है ।

इन छः आवश्यकों की क्रिया मन, वचन, काया की एकाग्रता त्रिकरणशुद्धि और शुद्धभावपूर्वक की जाए तो याकिनीमहत्तरासुनु भगवान श्री हरिभद्रसूरिजी महाराज के कथन अनुसार वह आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़नेवाली होने से योगस्वरूप/ध्यानस्वरूप बनती है । अतः सभी श्रद्धालु श्रावकों को पूर्ण भक्ति, बहुमान व श्रद्धा से छः आवश्यकों की क्रिया करनी चाहिये ।

अन्त में, छः आवश्यकों के बारे में परम पवित्र गीतार्थ शास्त्रकार भगवंत के आशयविरुद्ध या जिनाज्ञाविरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छा मि दुक्कडं देकर पूर्ण करता हूँ ।

संदर्भः

1. 'योगविंशिका' गाथा-1, कर्ताः याकिनीमहत्तरासुनु श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज

2. श्रीकल्पसूत्र टीका, प्रथम व्याख्यान, मूळ : श्रीभद्रबाहुस्वामीजी, टीकाकार : उपा. श्रीविनयविजयजी

3. वही

4. तृतीय आगम स्थानांगसूत्र ममें अंगबाह्यश्रुत के आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त ऐसे दो भेद बताकर आवश्यक को गणधरकृत और आवश्यकव्यतिरिक्त को स्थविरकृत बताया है ।

5. तिरि, नर, सुरसमुदाय के अचिराना नंद रे,
एक योजनमांहे समाय के अचिराना नंद रे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेहने प्रभुजीनी वाणी के अचिराना नंद रे,
परिणमे समजे भवि प्राणी के अचिराना नंद रे.

श्रीशांतिनाथजिनस्तवन, रचयिता : पं. श्रीपद्मविजयजी महाराज

6. * जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो ले. मुनि नंदीघोषविजयजी पृ. 89

** सद्दंधयार उज्जोअ, ... नवतत्त्व गाथा-11

*** स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः पुद्गलाः ।। 28 ।। तत्त्वार्थसूत्र अध्याय-5, सूत्र-28

7. जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो ले. मुनि नंदीघोषविजयजी 'मंत्र, यत्र अने ध्वनि : एक वैज्ञानिक विश्लेषण' पृ.188

8. "जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो" ले. मुनि नंदीघोषविजयजी 'मंत्र, यंत्र अने ध्वनि : एक वैज्ञानिक विश्लेषण' पृ.191

** 'Yantra' by Madhu Khanna, p. 116

9. श्रीकल्पसूत्र टीका, व्याख्यान-5 मूळ : श्रीभद्रबाहुस्वामीजी, टीकाकार : उपा. श्रीविनयविजयजी

10. वंजन अत्थ तदुभये..... नाणंमि सूत्र, गाथा-2

11. श्रीकल्पसूत्र मूळ, सामाचारी, सूत्र नं.- 3थी 8

To the enlightenedman...whose consciousness embraces the universe to him the universe becomes his 'body', while his physical body becomes a manifestation of the Universal Mind, his inner vision and expression of the highest reality, and his speech an expression of eternal truth and mantric power.

Lame Anagarika Govind, Foundations of Tibetan Mysticism p.225

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

16

इन्द्रिय और इन्द्रियज्ञान : आधुनिक विज्ञान व जैनदर्शन की दृष्टिसे

आधुनिक विज्ञान के अनुसंधान से पता चलता है कि जैनदर्शन पूर्णतः वैज्ञानिक है । जैनदर्शन के सिद्धांतों की परूपणा सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा ने की है । जैनदर्शन की मान्यता के अनुसार यह दर्शन इस ब्रह्मांड काल से अनादि-अनंत है ।[1] अतः उसके सिद्धांत की प्ररूपणा करने वाले तीर्थंकर भी अनंत हुए हैं और भविष्य में भी वे अनंत होंगे । सभी तीर्थंकर एक समान सिद्धांत की प्ररूपणा करते हैं ।

तीर्थंकर परमात्मा की सब से अनोखी विशिष्टता यह है कि प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् वे अपने साधना काल में पूर्णतः मौन रखते हैं । साधना पूर्ण होने के बाद केवलज्ञान स्वरूप आत्मप्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होने के बाद ही वे उपदेश देना शुरु करते हैं ।[2]

उन्होंने शरीर धारण करने वाले संसारी जीवों के इन्द्रिय के आधार पर पाँच प्रकार बताये हैं । इन्द्रिय पाँच है । 1. स्पर्शनेन्द्रिय/त्वचा, 2. रसनेन्द्रिय/जीभ, 3. घ्राणेन्द्रिय/नाक, 4. चक्षुरिन्द्रिय / आँख, 5. श्रवणेन्द्रिय/कान ।[3]

एकेन्द्रिय जीवों को सिर्फ एक ही इन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय होती है । पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, व वनस्पति एकेन्द्रिय जीव हैं । द्वीन्द्रिय जीवों को केवल दो इन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय व रसनेन्द्रिय होती है । शंख, कौडी, जोंक, कृमि, पोरा कैंचुआ आदि द्वीन्द्रिय जीव हैं । त्रीन्द्रिय जीवों को स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय व घ्राणेन्द्रिय होती है । खटमल, जूँ, लीख, चींटी, दीमक, मकोडा, ढोला (पिल्लू), धान्यकीट आदि त्रीन्द्रिय जीव हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों में उपर्युक्त तीन इन्द्रिय और चौथी चक्षुरिन्द्रिय होती है । बिच्छू, भौंरा, टिड्डी, मच्छर आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं । पँचेन्द्रिय जीव में पाँचवीं श्रवणेन्द्रिय भी होती है । गाय, घोडा, हाथी, सिंह, बाघ आदि पशु, मछली, मगर आदि जलचर जीव, मेंढक जैसे उभयचर जीव, तोता, मैना, कोयल, कौआ, चिडिया आदि पक्षी, सर्प, गोह, चंदनगोह आदि सरीसृप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(उरःपरिसर्प) जीव, नकुल, छिपली आदि भूजःपरिसर्प, देव, मनुष्य व नारक के जीव पँचेन्द्रिय हैं ।[4]

हाल ही में गुजरात समाचार की दिनांक 5, मार्च, 2003 की शतदल पूर्ति में डिस्कवरी कॉलम में डॉ. विहारी छाया ने " माइक मे " नामक एक आँख से देखने पर भी अंध मनुष्य के अनुभव का विश्लेषण करता हुआ लेख पढा । उसका तात्पर्य इस प्रकार है ।

"माइक मे" तीन साल का था तब खदान के मजदूरों के लिये जो लैम्प इस्तेमाल किया जाता है, जिसका आविष्कार हम्फ्री डेविड ने किया था । उसमें उपयोगी तैल से भरी हुई जार अर्थात् बोटल उनके मूँह के पास ही फूट जाने पर अकस्मात् हुआ । उसमें वह पूर्णतः अंधा हो गया । बाद में अंधत्व का सामना करके उसने बहुत सी सिद्धियाँ प्राप्त की । देखता हुआ मनुष्य जिस प्रकार कार्य करता है उससे भी बढिया, अच्छी तरह, सूक्ष्मता और जल्दी से काम करने लगा । अंधे मनुष्यों की पर्वत से नीचे उतरने की स्कीइंग की स्पर्धा में उनका वल्ड रेकॉर्ड था । इसी स्पर्धा में सीधे उतारवाले ब्लॅक डायमन्ड नामक पर्वत पर से वह प्रति घंटे 35 माईल के वेग से नीचे उतर जाता था । उसने ई. स. 2000 के मार्च माह में दृष्टि देनेवाला एक ओपरेशन करवाया और दाहिनी आँख में एक नेत्रमणि लगवाया । बाद में 20 मार्च को जब उसकी पट्टी खोली गई तब उसे दृष्टि मिल गई थी । उसकी पत्नी व उसके बच्चों से उसकी दृष्टि मिली । वह दाहिनी आँख से सब कुछ देख सकता था तथापि उससे स्पष्टरूप से किसी को पहचान नहीं सकता था ।

हमें सामान्यतया मालुम है कि अपनी आँखों में कॉर्निया पारदर्शक पटल व लैन्स (नेत्रमणि) ऐसे दो लैन्स होते हैं । किसी वस्तु में से निकलने वाले या उससे परावर्तित होने वाले प्रकाश की किरणें इन्हीं दो लैन्सों द्वारा उसके पीछे आये हुए रेटिना पर पड़ती हैं और वहाँ उसका एक प्रतिबिंब बनाती हैं । इस प्रतिबिंब को चेतनातंत्र द्वारा मग़ज़ में चक्षुरिन्द्रिय द्वारा प्राप्त अनुभव को पहचानने वाले दृष्टिकेन्द्र को पहुँचाया जाता है । बाद में यह दृष्टिकेन्द्र उन संकेतों का पूर्ण विश्लेषण करके उस वस्तु के पूर्ण स्वरूप की आत्मा को पहचान कराता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु " माइक मे " को दृष्टि मिल जाने के बाद भी वह सामने स्थित पदार्थ को स्पष्ट रूप से पहचान नहीं सकता था । उसकी दृष्टि पूर्णतः स्वच्छ थी तथापि उसका मग़ज़ दृश्यों का पृथक्करण कर नहीं सकता था । " माइक मे " को आँख द्वारा जो संकेत प्राप्त होते थे उसको पढने की पद्धति उसके मग़ज़ को मालुम नहीं थी । अतः मग़ज़ में उसी प्रकार की प्रक्रिया नहीं होती थी ।

डॉ. विहारी छाया ने कॉम्प्युटर की परिभाषा में इसी प्रश्न का पृथक्करण किया है । कॉम्प्युटर में हार्डवेअर व सॉफ्टवेअर नामक दो हिस्से होते हैं । ठीक उसी प्रकार अपना शरीर कुदरत का अपूर्व कॉम्प्युटर ही है । आँख उसका ही एक भाग है । उसमें कॉर्निया, नेत्रमणि,, रेटिना आदि हार्डवेअर हैं। जब आँख द्वारा जिसका दर्शन किया जाता है तब उसको अनुभव के रूप में आत्मा के साथ जुडने का काम मन या मग़ज़ के दृष्टिकेन्द्र की कार्यशीलता रूप सॉफ्टवेअर द्वारा होता है । " माइक मे " के लिये उसका हार्डवेअर तो अच्छी तरह काम करता था किन्तु चेतनातंत्र द्वारा प्राप्त दृश्य के संकेतों को पृथक्करण विश्लेषण करके पहचानने का सॉफ्टवेअर काम नहीं करता था । अतः दृश्य को देखने के बावजूद भी उसका आत्मा को स्पष्ट अनुभव नहीं होता था ।

इस बात को ही 2500 वर्ष पहले हो गये श्रमण भगवान श्री महावीरस्वामी ने उनके द्वारा प्ररूपित जैनदर्शन के ग्रंथों व आगमों में निम्नोक्त प्रकार से समझाया है । जिनका वास्तव में आश्चर्यजनक रूप से उपर्युक्त बात के साथ बहुत ही साम्य है ।

जैन शास्त्रकारों ने पाँचों इन्द्रियों के दो प्रकार बताये हैं । 1. द्रव्येन्द्रिय और 2. भावेन्द्रिय ।[5] द्रव्येन्द्रिय के दो प्रकार हैं । 1. निवृत्ति व 2. उपकरण। उसी प्रकार भावेन्द्रिय के भी दो प्रकार हैं । 1. लब्धि व 2. उपयोग ।[6]

जैन कर्मवाद के अनुसार इन्द्रिय की प्राप्ति अंगोपांग नामकर्म व निर्माण नामकर्म से होती है और उसे निवृत्ति रूप द्रव्येन्द्रिय कहा जाता है ।[7] उदा. स्पर्शनेन्द्रिय रूप त्वचा, रसनेन्द्रिय रूप जिह्वा, घ्राणेन्द्रिय रूप नासिका, चक्षुरिन्द्रिय रूप आँख और श्रवणेन्द्रिय रूप कान के रूप में निवृत्ति स्वरूप द्रव्येन्द्रिय प्राप्त होने पर भी वह पूर्णतः काम दे सके ऐसा कोई नियम नहीं है। और तत्तत् इन्द्रिय मे तत् तत् इन्द्रिय संबंधित विषय को ग्रहण करने की शक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहा जाता है । उदा. त्वचा प्राप्त होने पर भी यदि चेतनातंत्र अपना कार्य न करता हो तो स्पर्श का अनुभव नहीं होता है । यहाँ निवृत्ति रूप द्रव्येन्द्रिय प्राप्त होने पर भी उपकरण रूप द्रव्येन्द्रिय का अभाव है । ठीक उसी तरह सभी इन्द्रिय के लिये जान लेना । संक्षेप में त्वचा के स्पर्श का अनुभव करने की शक्ति, जीभ में स्वाद को पहचानने की शक्ति, नाक की सुगंध या दुर्गंध को पहचानने की शक्ति, आँख की दृश्य देखने की शक्ति और कान की श्रवण करने की क्षमता ही उपकरण रूप द्रव्येन्द्रिय है ।[8]

निवृत्ति व उपकरण स्वरूप द्रव्येन्द्रिय द्वारा तत् तत् इन्द्रिय संबंधित विषयक संकेत मग़ज़ को पहुँचाये जाते हैं । मग़ज़ में पहुँचे हुए इन्हीं संकेतों को पहचानने का कार्य मग़ज़ में स्थित भावेन्द्रिय स्वरूप लब्धि करती है । लब्धि अर्थात् शक्ति जिसे कॉम्प्युटर की भाषा में सॉफ्टवेयर कहा जा सकता है। वह मन के द्वारा सक्रिय होती है तब उपयोग रूप भावेन्द्रिय कार्य करती है। तत् तत् इन्द्रिय संबंधित लब्धि उसको आवृत्त करने वाले कर्म के क्षयोपशम या नाश से पैदा होती है । उदा. गति नामकर्म और जाति नामकर्म से देव, मनुष्य व नारक गति में सभी पाँच इन्द्रिय संबंधित शक्ति प्राप्त होती है । जबकि तिर्यंच गति में जाति नामकर्म से एकेन्द्रियत्व, द्वीन्द्रियत्व, त्रीन्द्रियत्व, चतुरिन्द्रियत्व या पंचेन्द्रियत्व प्राप्त होता है । अतः तत् तत् जाति में तत् तत् गति संबंधित इन्द्रिय संबंधित लब्धि शक्ति प्राप्त होती है ।[9] और उपयोगस्वरूप भावेन्द्रिय का आधार मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय व चक्षुदर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम या नाश पर है।[10] अतः पंचेन्द्रियत्व प्राप्त होने पर भी क्वचित् उपर्युक्त चार कर्म में से किसी भी कर्म के उदय/अस्तित्व से तत् तत् इन्द्रिय संबंधित ज्ञान प्राप्त नहीं होता है ।

किसी भी इन्द्रिय द्वारा गृहीत संकेतों का पृथक्करण करने की शक्ति ही लब्धि स्वरूप भावेन्द्रिय है । इस शक्ति के कार्यान्वित होने पर दृश्य की पहचान या उसी इन्द्रिय द्वारा प्राप्त अनुभव आत्मा तक पहुँचता है । जिसे उपयोगस्वरूप भावेन्द्रिय कहा जाता है ।

इस प्रकार दोनों प्रकार की द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय मन से मिलकर कार्य करती हैं तब आत्मा को उस-उस इन्द्रिय संबंधित ज्ञान होता है ।

आत्मा को इन्द्रियप्रत्यक्ष पदार्थ का बोध कराने के लिये मन एक महत्त्वपूर्ण माध्यम/साधन है । आत्मा को इन्द्रिय से होने वाले अनुभव के साथ जुडने का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काम मन करता है । यदि मन का इन्द्रिय के साथ संबंध तोड दिया जाय तो इन्द्रिय द्वारा होने वाला अनुभव आत्मा तक नहीं पहुँचता है ।

"माइक मे" ने 40 वर्षों तक उसके दिमाग/मग़ज़ के दृष्टिकेन्द्र का तनिक भी उपयोग नहीं किया था क्योंकि निवृत्ति व उपकरण स्वरूप द्रव्येन्द्रिय के द्वारा दृश्य को ग्रहण करने की शक्ति ही नहीं थी । परिणामतः तत्संबंधित मग़ज़ का दृष्टिकेन्द्र काम करता बंद हो गया था । अब जब तक वह दृष्टिकेन्द्र अपना काम शुरु न करें तब तक किसी भी दृष्य की सही पहचान उनको नहीं हो सकती । इसका आधार उसके ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्मों के क्षयोपशम या नाश पर निर्भर करता है ।

बहुत से लोग अपनी आँखों की कैमेरा के साथ तुलना करते हैं । वैसे तो जिस प्रकार कैमेरा काम करता है ठीक उसी प्रकार अपनी आँखें काम करती हैं । किन्तु आँख की काम करने की शक्ति व गतिशीलता आधुनिक युग के सुपर कॉम्प्युटर से भी कहीं ज्यादा है । उदा. कैमेरे में किसी दृश्य को लेना हो तो उस दृश्य का पदार्थ कितनी दूरी पर है उसकी गिनती करके फोकसिंग किया जाता है । अब मान लिया जाय कि उसी दृश्य में कोई एक पदार्थ बिल्कुल नजदीक है और दूसरा पदार्थ बहुत ही दूरी पर है। यदि आप नजदीक के पदार्थ पर फोकसिंग करंगे तो दूर का पदार्थ धुंधला हो जायेगा और यदि दूर के पदार्थ पर फोकसिंग करेंगे तो नजदीक का पदार्थ धुंधला हो जायेगा । कैमेरा में दोनों पदार्थ एक साथ स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देंगे ।

जबकि अपनी आँखों के सामने एक पदार्थ बिलकुल नजदीक हो और एक पदार्थ बहुत दूर हो तथापि दोनों एक साथ स्पष्टरूप से दिखाई देंगे । यही अपनी आँखों की विशेषता है । इस प्रकार पूर्ण स्पष्ट चित्र सिर्फ अपनी आँखों से ग्रहण करके मस्तिष्क के दृष्टिकेन्द्र में भेजा जाता है । वहाँ तत्संबंधित लब्धि स्वरूप सॉफ्टवेयर होता है । जब मस्तिष्क उसका उपयोग करता है तभी वह दृश्य आत्मा तक पहुँचता है और उसका स्थायी स्वरूप मग़ज़ में संग्रहीत हो जाता है । बाद में कभी पाँच सात साल के बाद उसी दृश्य संबंधित कोई भी पदार्थ सामने आ जाता है तब स्मरणशक्ति द्वारा अपना मग़ज़ उसके स्मृतिकोश में से उसी पुराने दृश्य की छबि को ढूंढ निकालकर स्मरणपट पर रख देता है । इसका मूल कारण अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणीय व दर्शनावरणीय कर्मो के क्षयोपशम या नाश और लब्धि व उपयोग स्वरूप भाव इन्द्रिय का कार्य है । और यही स्मृति संस्कार अपने आत्मा के साथ अगले जन्म में भी जाते हैं । उस समय यदि क्वचित् पूर्वभव संबंधि कोई दृश्य या पदार्थ अपने सामने आता है तो उसका स्मरण हो जाता है जिसे जातिस्मरण ज्ञान कहा जाता है । जैन दार्शनिकों ने इस प्रकार के पूर्वजन्म संबंधित ज्ञान को मतिज्ञान अर्थात् स्मृतिशक्ति का ही प्रकार माना है।[11]

संक्षेप में, सिर्फ बाह्य उपकरण स्वरूप द्रव्य इन्द्रिय प्राप्त होने से आत्मा को उसका अनुभव नहीं हो सकता है । किन्तु जब तक बाह्य उपकरण स्वरूप द्रव्य इन्द्रिय से गृहीत संकेतों को लब्धि व उपयोग स्वरूप भाव इन्द्रिय द्वारा पहचाना नहीं जा सकता तब तक आत्मा को उसका अनुभव नहीं होता है । इस कार्य में मन या मस्तिष्क एक आवश्यक साधन है । वह इन्द्रिय के विषय और तत्संबंधित अनुभव को आत्मा के साथ जोड़ देता है ।

जैन परंपरा में कायोत्सर्ग एक प्रकार का उत्कृष्ट ध्यान है । कायोत्सर्ग में उसके शब्दों के अनुसार काय अर्थात् शरीर का उत्सर्जन किया जाता है और उसकी एक विशिष्ट प्रक्रिया है । ध्यान अर्थात् मन, वचन, काया की एकाग्रता ।वह अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी । शुभ ध्यान को जैन परंपरा में धर्मध्यान और शुक्लध्यान कहते हैं । जबकि अशुभ ध्यान को आर्तध्यान व रौद्रध्यान कहते हैं । प्रिय पदार्थ के वियोग में और अप्रिय पदार्थ के संयोग में सब को आर्तध्यान होता है । उसी प्रकार प्राप्त किये पदार्थ के रक्षण की चिंता में रौद्रध्यान पैदा होता है । सामान्यतः मनुष्य खराब ध्यान बार बार करता है किन्तु शुभध्यान सभी के लिये बहुत ही कष्टसाध्य है । उसमें ऊपर बतायी हुई समझ काफी महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है । ध्यान में मन का व्यापार ही महत्त्वपूर्ण है । मन जितनी गहराई में सोच सके उतना ध्यान ज्यादा दृढ होता है । किन्तु इस चिंतन का आधार ज्ञान है । जितना ज्ञान विशाल उतनी गहराई में चिंतन हो सकता हो अर्थात् ज्ञान ही ध्यान का आधार है । बिना ज्ञान ध्यान हो ही नहीं सकता ।

कायोत्सर्ग के दौरान मन चिंतन में लग जाता है अतः उसका आत्मा के साथ संबंध जुड जाता है और बाह्य द्रव्येन्द्रिय के साथ उसका संपर्क टूट जाता है । इस प्रकार ध्यानस्थ अवस्था में द्रव्येन्द्रिय का भावेन्द्रिय से संबंध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टूट जाता है । परिणामतः कायोत्सर्ग अवस्था मे किसी भी मनुष्य या पशु-पक्षी द्वारा यदि शारीरिक दुःख पैदा किया जाता है तो उसका आत्मा को तनिक भी अनुभव नहीं होता है । अतएव ध्यानस्थ भगवान महावीरस्वामी को गौपालक ने कान में कीलें लगाये तब उनको दुःख का कोई अनुभव नहीं हुआ था किन्तु खरक वैद्य ने जब प्रभु के कान में से कीलें बाहर निकाले उस समय उन्होंने भयंकर/तीव्र चीख निकाली थी ।[12]

इस प्रकार विज्ञान में जो अनुसंधान अभी हो रहे हैं उसका ही प्रतिपादन भगवान महावीर ने 2500 साल पहले किया था जिन्हें जैन धर्मग्रंथों में पाया जाता है ।

संदर्भ:

1. द्रष्टव्य : जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो ले. मुनि श्री नंदीघोषविजयजी पृ.नं. 166
2. कल्पसूत्र टीका, व्याख्यान नं. 6 (टीकाकार : उपा. श्री विनयविजयजी)
3. स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः-श्रोतानि ।।20।। (तत्त्वार्थ सूत्र - अध्याय 2, सूत्र नं. 20)
4. जीवविचार प्रकरण, गाथा नं. 2, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 21
5. पंचेन्द्रियाणि ।।15।। द्विविधानि ।।16।। निवृत्त्युपकरणद्रव्येन्द्रियम् ।।17।।
(तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-2, सूत्र नं. 15, 16, 17)
6. लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् ।।18।। (तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-2, सूत्र नं. 18)
7. निवृत्तिरङ्गोपाङ्गनामनिर्वर्तितानीन्द्रियद्वाराणि ।।
निर्माणनामाङ्गोपाङ्गप्रत्यया ।। (तत्त्वार्थसूत्र टीका, अध्याय-2, सूत्र नं. 17)
8. यत्र निवृत्तिद्रव्येन्द्रियं तत्रोपकरणेन्द्रियमपि न भिन्नदेशवर्त्ति, तस्याः स्वविषय-ग्रहणशक्तेर्निवृत्तिमध्यवर्त्तिनीत्वात् ।। (तत्त्वार्थसूत्र टीका, अध्याय-2, सूत्र नं. 17)
9. लब्धिर्गतिजातिनाकर्मजनिता तदावरणीयकर्मक्षयोपशमजनिता च ।।
(तत्त्वार्थसूत्र टीका, अध्याय-2, सूत्र नं. 18)
10. स्पर्शादिषु मतिज्ञानोपयोगः ।। (तत्त्वार्थसूत्र टीका, अध्याय-2, सूत्र नं. 18)
11. कर्मग्रंथ टीका, गाथा नं. 4-5 (आ. श्री देवेन्द्रसूरिकृत)
12. कल्पसूत्र, संस्कृत टीका, व्याख्यान नं. 6 (टीकाकार उपा. श्री विनयविजयजी)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

17

देवनागरी लिपि और उसका वैज्ञानिक महत्त्व

भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से संस्कृत भाषा को गीर्वाणभाषा/देवभाषा कही जाती है और इस भाषा व भारतीय संस्कृति की कई भाषाओं की लिपि देवनागरी है। भाषा व लिपि दोनों भिन्न भिन्न चीजें हैं। ध्वनिशास्त्र में दोनों का विशेष महत्त्व है।

भारतवर्ष की कुछ भाषाओं की लिपि देवनागरी है। उसमें हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी, इत्यादि भाषाओं का समावेश होता है। देवनागरी लिपियुक्त भाषाएँ व उसीके वर्ग में आनेवाली अन्य भाषाओं की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसी भाषा के शब्द या वाक्य इत्यादि के उच्चारण उस-उस शब्द या वाक्य में प्रयुक्त स्वर-व्यंजन के अनुसार ही होते हैं। अर्थात् उस भाषाओं में जैसे बोला जाता है वैसे ही लिखा जाता है और जैसे लिखा जाता है वैसे बोला भी जाता है। वाक्य या शब्द में लिखा गया एक भी अक्षर - स्वर या व्यंजन अनुच्चरित (silent) नहीं रहता है।[1] हालाँकि प्राचीन काल में वेद वाक्य में प्रयुक्त स्वर का उच्चारण भी विशिष्ट पद्धति से किया जाता था। अतः उस स्वर के स्वरभार को बताने के लिये उसके ऊपर विशिष्ट चिह्न भी रखे जाते थे और उसका उच्चारण आवश्यक रूप से उन चिह्नों के अनुसार ही किया जाता था। उसका वैज्ञानिक कारण था।[2]

देवनागरी लिपि के स्वर-व्यंजन की योजना व उसके उच्चारण पूर्णतः वैज्ञानिक है ऐसा आधुनिक विज्ञान के अनुसंधानों ने बताया है। देवनागरी लिपि में स्वर की संख्या चौदह बतायी है। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ। अं और अः में निर्दिष्ट ं और ः स्वर नहीं हैं किन्तु उन दोनों का स्वतंत्र उच्चारण असंभव होने से उसके पूर्व में अ रखा गया है। अतः प्राचीन काल के सभी वैयाकरणों ने उनको स्वर के साथ स्थान दिया है। मंत्रशास्त्र में उसका विशेष महत्त्व होने से मंत्रशास्त्रकारों ने सोलह स्वर माने हैं। पाणिनीय परंपरा में दीर्घ ॠ और दीर्घ ॡ नहीं बताये है क्योंकि उनका प्रयोग ज्यादा नहीं होता है। जबकि *सिद्धहेमशब्दानुशासन*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(संस्कृत व्याकरण) के कर्ता कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी ने दीर्घ ऋ और दीर्घ लृ दोनों का निर्देश किया है । इनके संबंधित नियम भी बताये हैं। देवनागरी लिपि के व्यंजन की व्यवस्था प्राचीन काल से इस प्रकार चली आती है ।[5]

क, ख, ग, घ, ङ - कवर्ग - कंठ्य, च, छ, ज, झ, ञ-चवर्ग- तालव्य,
ट, ठ, ड, ढ, ण - टवर्ग - मूर्धन्य त, थ, द, ध, न - तवर्ग - दंत्य,
प, फ, ब, भ, म - पवर्ग - ओष्ठ्य, य, व, र, ल - उष्माक्षर
श - तालव्य, ष - मूर्धन्य, स - दंत्य, ह - महाप्राण,
क्ष = क् + ष, ज्ञ = ज् + ञ व - दंत्यौष्ठ्य

क वर्ग के सभी व्यंजनों का उत्पत्ति स्थान कंठ होने से उन्हें कंठस्थ कहा जाता है । जबकि चवर्ग के व्यंजन का उच्चारण करते समय जिह्वा व तालु का संयोग होता है अतः उन्हें तालव्य अर्थात् तासु द्वारा निष्पन्न कहा जाता है । टवर्ग के व्यंजन की असर मूर्धन् अर्थात् मस्तिष्क तक पहुँचती है या उसका उत्पत्ति स्थान मस्तिष्क है, अतः उसे मूर्धन्य कहा जाता है । तो तवर्ग के व्यंजन का उच्चारण करते समय जीभ ऊपर व नीचे दोनों ओर दांत को स्पर्श करती है अतः उन्हें दन्त्य कहा जाता है । पवर्ग के व्यंजन के उच्चारण करते वख्त दोनों ओष्ठ इक्कट्ठे होते हैं अतः उन्हें ओष्ठ्य व्यंजन कहा जाता है ।[6]

कहा जाता है कि साढे तीन सौ वर्ष पूर्व महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज ने काशी के किसी विद्वान के साथ पवर्ग के एक भी व्यंजन और व के उपयोग किये बिना बहुत लम्बे समय तक शास्त्रार्थ किया था । और ओष्ठ्य व्यंजन का उपयोग नहीं हुआ है, उसका निर्णय करने के लिये ऊपर के एक ओष्ठ को लाल रंग का हरताल लगा दिया था । यदि पवर्ग के व्यंजन का प्रयोग हो जाय तो ऊपर के ओष्ठ का रंग नीचेवाले ओष्ठ को लग जाय किन्तु उपाध्यायजी महाराज ने ऐसी कड़ी शर्त का बराबर पालन किया।

ऊपर बताया उसी प्रकार य, व, र, ल श, ष, स, ह के सभी निश्चित उच्चारण स्थान बताये हैं । ह को महाप्राण कहा है क्योंकि उसका उच्चारण नाभि व वक्षस्थल से होता है । देवनागरी लिपि के अन्त में क्ष और ज्ञ बताये हैं । किन्तु ये दो स्वतंत्र अक्षर नहीं हैं, किन्तु वे दो दो व्यंजन के संयोजन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से निष्पन्न हैं । यहाँ इतना याद रखना कि आधुनिक विज्ञान ने हाल ही में ई. स. 1807 में ही ध्वनिशास्त्र (acoustics) की शोध की है उससे हजारों साल पहले यही वर्णमाला व उसका विश्लेषण प्राचीन भारतीय साहित्य में चला आ रहा है । और संस्कृत व्याकरण के अध्येता उसका अध्ययन करते थे और आज भी कर रहे हैं । जब पश्चिम में उस समय किसी भी प्रकार के विज्ञान का जन्म भी नहीं हुआ था । ईसा की सत्रहवीं सदी में हुए अर्नस्ट च्लेन्डी (Ernst Chlandi) नामक जर्मन विज्ञानी व निष्णात संगीतकार को ध्वनिशास्त्र का पिता माना गया है ।[7]

देवनागरी लिपि जिसमें प्राचीन काल से संस्कृत भाषा द्वारा अपने विचार व भावनाएँ अभिव्यक्त की जाती थीं और उसके लिये वह महत्त्वपूर्ण माध्यम थी । इसी लिपि के स्वर-व्यंजन के आकार भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । प्राचीन काल के दिव्यज्ञानवाले महापुरुषों ने इन्हीं स्वर-व्यंजन के आकार को अपने विशिष्ट ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन / साक्षात्कार किया था । बाद में उन्हीं अक्षरों के आकार को लिपिबद्ध किया था । अर्थात् उच्चरित स्वर-व्यंजन के ध्वनि की आकृति दी गई ।

आज हजारों वर्ष बाद भी इन्हीं स्वर-व्यंजन के आकार लिपि में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है । इतना ही नहीं ई. स. 1967 में स्विस डॉक्टर स्व. हेन्स जेनी नामक आर्टिस्ट व विज्ञानी संशोधक ने खास तौर से बताया कि जब भी हिब्रु व संस्कृत (प्राकृत व अर्धमागधी) जैसी प्राचीन भाषा के स्वर-व्यंजन का उच्चारण किया जाता है तब उसके सामने स्थित रेत में उसी स्वर-व्यंजन की आकृति हो जाती है । जबकि हमारी वर्तमान भाषाओं के उच्चारण के दौरान ऐसा परिणाम नहीं मिलता है ।[8]

इसके बारे में प्रश्न उपस्थित करते हुए हेन्स जेनी कहते हैं : *यह कैसे संभव है ? क्या भारतीय व हिब्रु भाषा के निष्णातों को इस बात की समझ थी ? यदि ऐसी समझ हो तो यह महान आश्चर्य है । क्या पवित्र भाषाओं के बारे में उनका कोई विशिष्ट या निश्चित ख्याल/विचारधारा होगी ? और इन पवित्र भाषाओं के लक्षण क्या थे ? क्या इन भाषाओं में भौतिक पदार्थों में परिवर्तन करने का या उस पर असर पैदा करने का सामर्थ्य था ? या क्या इन भाषाओं के मंत्र की शक्ति द्वारा भौतिक पदार्थ उत्पन्न किये जा सकते हैं? या क्या किसी भी व्यक्ति के मानसिक व शारीरिक रोगों की चिकित्सा*

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन पवित्र मंत्रों के गान/गीत-संगीत द्वारा की जा सकती है ? क्या दंतकथा स्वरूप पिरामिड के चमत्कारिक प्रभाव जैसा असर इन पवित्र सुर-स्वर द्वारा पैदा किया जा सकता है ?"[9]

यहाँ ध्यान में रखा जाय कि भारतीय भाषाओं की लिपि व ध्वनि/उच्चारण के बारे में ये प्रश्न किसी भारतीय या फ़ालतू व्यक्ति के नहीं हैं किन्तु ई. स. *1957 से इसी क्षेत्र में अनुसंधान करने वाले स्विस डॉक्टर स्व. हेन्स जेनी* के हैं ।

प्रसंग के अनुसार दूसरी एक बात खास तौर से ध्यान में रखने योग्य है कि वि. सं. 1199 के दौरान गुजरात की अस्मिता के पुरोधा कलिकालसर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी ने श्री सिद्धहेमशब्दानुशासन नामक एक व्याकरण की रचना की है । इस व्याकरण में प्रथम सात अध्याय/विभाग में संस्कृत भाषा का व्याकरण बताया गया है किन्तु इसके आठवें अध्याय में प्राकृत आदि छः भाषाओं का व्याकरण भी बताया गया है । वे इस प्रकार हैं- 1. प्राकृत, 2. अर्धमागधी, 3. शौरसेनी, 4. पैशाची, 5. चूलिका पैशाची, 6. अपभ्रंश ।[10] इसमें पैशाची भाषा के लिये कहा जाता है कि प्राचीन काल से इस भाषा में प्रेतयोनि के जीव व्यवहार करते हैं । अतः प्रेतयोनि के जीव को वश करने के मंत्र इसी भाषा में होते हैं । जिनके अर्थ उसी मंत्र के साधकों को भी मालुम नहीं होता है ।

प्राचीन श्वेताम्बर मूर्तिपूजक जैन परंपरा के साहित्य में नवस्मरण नाम से प्रसिद्ध स्तोत्र संगीत-चिकित्सा व मंत्र-चिकित्सा के अमूल्य साधन हैं । हाल ही में इन्टरनेट से प्राप्त जानकारी के अनुसार फबिएन ममन (Fabien Maman) नामक संशोधक ने बताया है कि संगीत के सुर में C, D, E, F, G, A, B, C' व D' सुर के क्रम से प्रायः 14 -14 मिनिट तक सतत संगीतमय उच्चारण करने पर कैन्सर की कोशिकाओं का नाश होता है ऐसा प्रायोगिक परिणाम में देखा गया है । इतना ही नहीं सूक्ष्मदर्शकयंत्र (Microscope) में रखे गये कैन्सर की कोशिका की स्लाइड में कैन्सर की कोशिकाओं का नाश प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है । और उसके फोटोग्राफ्स भी लिये गये हैं । वे इनसे संबंधित वेबसाईट में रखे गये हैं ।[11]

पिछले कुछ वर्षों में हमारे पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विजयसूर्योदयसूरिजी महाराज के अनुभव में ऊपर बताये हुए नवस्मरण स्तोत्र के अन्तर्गत तीसरे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्री संतिकरं स्तोत्र का अद्‌भुत प्रभाव देखने को मिला है । श्री साराभाई मणिलाल नवाब द्वारा प्रकाशित " *महाप्रभाविक नवस्मरण* " ग्रंथ में एक संतिकरं कल्प है । उसके अनुसार विधि करने पर उसका अनुभव हो सकता है ।[12]

इस संतिकरं स्तोत्र की रचना श्री मुनिसुंदरसूरिजी महाराज नामक जैनाचार्य ने की है । इस स्तोत्र में श्रीशांतिनाथ परमात्मा की स्तुति की गई है । जैन परंपरा के अनुसार इस वर्तमान अवसर्पिणी काल में हुए चौबीस तीर्थंकरों में से श्री शांतिनाथ सोलहवें तीर्थंकर हैं । कलिकाल सर्वज्ञ श्री हेमचंद्राचार्यजी के त्रिष्टिशलाकापुरुष चरित्र के अनुसार श्री शांतिनाथ प्रभु उनकी माता श्रीअचिरादेवी के गर्भ में थे उस वख्त हस्तिनापुर नगर में किसी भी कारण से मरकी-महामारी भारी उपद्रव हुआ था । उस समय ज्ञानी गुरु भगवंत की सूचना अनुसार श्री अचिरा माता के स्नात्र-अभिषेक के जल का समग्र नगर में छंटकाव किया गया और उससे समग्र नगर में से रोग दूर हो गया था ।[13] प्रथम दृष्टि से आज के विज्ञान युग में यह असंभव - अशक्य माना जाय किन्तु तटस्थ अनुसंधान की दृष्टि से इस घटना का मूल्यांकन किया जाय तो इसमें कोई आश्चर्यजनक नहीं है ।

इस स्तोत्र के रचयिता आचार्य श्री मुनिसुंदरसूरिजी महाराज भी मंत्रशास्त्र के महान ज्ञाता व सत्त्वशाली महापुरुष थे ।

उन्होंने सूरिमंत्र की संपूर्ण आराधना विधिपूर्वक 24 बार की थी । जो सामान्यतः कोई भी आचार्य केवल एक या दो बार करते हैं ।

इस स्तोत्र के विधिपूर्वक जाप से कैन्सर जैसे महाव्याधि मे उसकी गांठें अदृश्य हो पायी हैं ।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि किसी भी संगीत के साधन द्वारा उत्पन्न संगीत के सुरों के बजाय संगीतकार द्वारा ही अपने मुख से जो सुर उत्पन्न किया जाता है वह ज्यादा शक्तिशाली होता है और वह दर्दी पर ज्यादा असर पैदा करता है । यह बात वर्तमान वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा स्पष्ट होती है ।[14] जो तार्किक रीत से भी संपूर्ण सत्य है क्योंकि संगीत के साधन द्वारा उत्पन्न सुरों में एक ही प्रकार के सुर में भिन्न भिन्न बहुत से प्रकार के अक्षर, शब्द की ध्वनि समाविष्ट हो जाती है । जबकि संगीतकार मनुष्य द्वारा मुख से ही जिस सुर का उच्चारण किया जाता है उस वख्त वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवल एक ही प्रकार के अक्षरों या शब्दों की ध्वनि होती है । अतः वह ज्यादा घन - तीव्र बनता है, परिणामतः संगीत के साधन के ध्वनि से उसका ज्यादा व स्पष्ट असर होता है ।

सामान्यतः आधुनिक औषधविज्ञान में जिस कैन्सर के व्याधि को असाध्य माना गया है, वह संगीत के सुरों द्वारा व मंत्र चिकित्सा द्वारा दूर हो सकता है ऐसा पश्चिम में किये गये अनुसंधान से पता चलता है ।

मंत्रशास्त्र के वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये हाल ही में अमरिका में बनाया गया टोनोस्कॉप नामक यंत्र बहुत ही उपयोगी है । इस यंत्र की महत्ता बताते हुए उसके अनुसंधानकार हेन्स जेनी कहते हैं कि दूसरे कोई भी प्रकार के इलेक्ट्रोनिक साधन की बिना सहायता ही टोनोस्कॉप नामक यह यंत्र मनुष्य की आवाज का दृश्य में रूपांतर करता है । और इसी साधन की सहायता से भाषागत कोई भी स्वर या व्यंजन के तथा संगीत के विभिन्न सुरों को सीधे ही भौतिक आकृति में दृश्यमान बनाकर आगे का अनुसंधान करने की संभावनाओं का निर्माण हुआ है ।[15]

हमारी भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था (Research Institute of Scientific Secrets from Indian Oriental Scriptures), अहमदाबाद हाल ही में कार्यान्वित हुई है । वह निकट के भविष्य में इसी यंत्र के द्वारा स्व. हेन्स जेनी द्वारा उपस्थित किये गये प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करेगी तथा यंत्र, मंत्र, तंत्र के बारे में विशिष्ट प्रायोगिक अनुसंधान कार्य शुरु करेगी ।

संक्षेप में, संस्कृत भाषा एक ऐसी विशिष्ट भाषा है कि जो पूर्णतः वैज्ञानिक है । इतना ही नहीं, किन्तु प्राचीन काल के ऋषि मुनिओं को इसके बारे में जितना ज्ञान था उसका अंश मात्र भी वर्तमान लोगों के पास नहीं है । उस ज्ञान को प्राप्त करने हेतु इस संस्था द्वारा अनुसंधान किया जायेगा ।

संदर्भ :

1. जैनदर्शननां वैज्ञानिक रहस्यो ले. मुनि श्री नंदीघोषविजयजी (प्र. भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था जनवरी 2000) पृ. 91

2. द्रष्टव्य : पाणिनीय अष्टाध्यायी (संस्कृत व्याकरण)

3. सिद्धहेमशब्दानुशासन सूत्र - औदन्ताः स्वराः । 1 - 1 - 4. अं अः अनुस्वारविसर्गौ। 1 - 1 - 9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

4. सिद्धहेमशब्दानुशासन सूत्र - औदन्ताः स्वराः । 1 - 1 - 4. एक-द्वि-त्रिमात्रा ह्रस्व-दीर्घ-प्लुताः 1 - 1 - 5 । अनवर्णा नामी 1 - 1 - 6 । लृदन्ताः समानाः 1 - 1 - 7 । अं अः अनुस्वारविसर्गौ । 1 - 1 - 9

5. सिद्धहेमशब्दानुशासन सूत्र - कादिर्व्यंजनम् । 1 - 1 - 6

6. सिद्धहेमशब्दानुशासन सूत्र तुल्यस्थानास्यप्रयत्नः स्वः । 1 - 1 - 17 और उसकी वृत्ति ।

7. Ernst Chlandi who has been referred to as the father of acoustics

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

8. In his research with tonoscope, Jenny noticed that when vowels of the ancient languages of Hebrew and Sanskrit were pronounced, the sand took the shape of the written symbols of these vowels, while our modern languages, on the other hand did not generate the same result.

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

9. Jenny questioned how this was possible. Did the ancient Hebrews and Indians understand what seemed a mystery to us? Is there something to the concept of "Sacred Languages"? What qualities of these "Sacred Languages" possess? Do they have the power to influence and transform physical reality, to create things through their inherent power, or, to take a concrete example, through the recitation or singing of sacred text, to heal a person who has gone "out of tune"? Were these "sacred tones" used to create such miracles as the pyramids?

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

10. द्रष्टव्य : सिद्धहेमशब्दानुशासन, आठवाँ अध्याय, चौथा पाद

11. The most dramatic influence on the cells (as shown in the actual photographs above) came from the human voice when Maman sang a series of scales into the cells. Over a period of fourteen minutes the nine musical notes (C - D - E - F - G - A - B - and C and D from next octave above) were sung. The structure quickly disorganized.

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

12. महाप्रभाविक नव स्मरण (प्रकाशकः साराभाई मणिलाल नवाब, अमदावाद)

13. द्रष्टव्य : त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र गत श्री शांतिनाथ चरित्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(कर्ताः कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्राचार्यजी)

14. The human voice carries something in its vibrations that makes it more powerful than any musical instrument.

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

15. The tonoscope was able to make the human voice visible without any electronic apparatus as an intermediate link. This made possible an ability to view the physical image of a vowel, a tone that a human being produced directly. Thus, Jenny could not only hear a melody - they could see it, too !

(An Article "The Science of Sound Healing" from Internet)

When all in the world understand beauty to be beautiful, then ugliness exists; when all understand goodness to be good, then evil exists.

But Aristotle himself believed that questions concerning the human soul and the contemplation or God's perfection were much more valuable than investigations of the material world.

Fritjof Capra

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Research Institute of Scientific Secrets from Indian Oriental Scriptures (RISSIOS)

भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था

Reg. Office: C/o Mr. Supremebhai P. Shah
45 / B, Parulnagar, Sola Road, Nr. Bhuyangdev X Roads
Ghatlodia, Ahmedabad - 380 061 INDIA
Phone: +91-79-27480702, Mobile: 9825071116
E-mail: nandighosh@yahoo.com
Website: http//www.jainscience-rissios.org

संस्था का लक्ष्य :

भारतीय प्राचीन तत्त्वज्ञान व उसकी प्राचीन पाण्डुलिपियों के आधार पर भौतिकी पर्यावरण, रसायणशास्त्र, गणित, मंत्रविज्ञान, संगीत, आहारविज्ञान, ध्यान, वैकल्पि चिकित्सा पद्धतियाँ इत्यादि के बारे में वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य करने के लि **"भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था"** की स्थापना की गई है

अनुसंधान कार्य का महत्त्व :

अपनी नयी पीढी के युवक युवतियाँ व आगे होनेवाली बहुत सी पीढीयाँ ज केवल शास्त्रीय संदर्भ व तार्किक दलीलों का स्वीकार नहीं करती है और वैज्ञानि संदर्भ मांगती है उसमें धर्मश्रद्धा पैदा करने के लियेऔर थोडी सी भी श्रद्धा हो त उसे दृढ करने के लिये प. पू. शासनसम्राट तपागच्छाधिपति आचार्य भगवं **श्रीविजयनेमिसूरीश्वरजी** महाराज के पट्टधर प. पू. सिद्धान्तवाचस्पति आचार्य श्री **विजय उदयसूरीश्वरजी** म. के पट्टधर प. पू. ज्योतिषमार्तंड आचा **श्रीविजयनंदनसूरीश्वरजी** के हस्तदिक्षित व प. पू. आचार्य **श्रीविजयसूर्योदयसूरीश्वरज** के शिष्य प. पू. पंन्यास **श्रीनंदिघोषविजयजी** महाराज की प्रेरणा से हमने उपर्यु नाम से वैज्ञानिक प्रायोगिक संस्था शुरु की है ।

ऐसे अनुसंधान के द्वारा नई पीढी में आध्यात्मिक व नैतिक शक्ति पैदा करके उन उच्चतम स्थाई संस्कारयुक्त चारित्रनिर्माण व जीवननिर्माण करना संस्था का लक्ष्य है इसी संस्था द्वारा किये गये अनुसंधान से कोई भी व्यक्ति अपने वैज्ञानिक दृष्टिको से युक्त बौद्धिक विकास कर सकेगा । बुद्धिमान व्यक्ति राष्ट्र के विकास में अच्छ तरह सहयोग दे सकता है । साथ साथ अपने दैनंदिन जीवन में भी आध्याति सिद्धांतों का उपयोग करके आत्मिक विकास कर सकता है ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

था का महत्त्व :

आज के नये युग की व नयी पीढी की शंकाओं का समाधान करने के लिये अपने ीन तात्त्विक साहित्य के आधार पर प्रायोगिक वैज्ञानिक अनुसंधान करने वाली भी संस्था संपूर्ण विश्व में कहीं नहीं है । **RISSIOS** ही केवल एकमेव व पहली ऐसी संस्था है । इस संस्था के द्वारा होनेवाले अनुसंधानों से -

*** भारतीय संस्कृति की धार्मिक भावनाएँ संस्कारमय जीवन, व पारिवारिक मूल्यों की रक्षा होगी ।**

*** धार्मिक, आध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों की रक्षा होगी ।**

*** नयी पीढी वैज्ञानिक दृष्टि से धर्म व जीवन को समजने का प्रयत्न करेगी और उसका स्वीकार करेगी ।**

स्था का कार्य :

हमारी संस्था के द्वारा परम पूज्य मुनि **श्रीनंदिघोषविजयजी** महाराज लिखित ैनदर्शन के वैज्ञानिक रहस्य" नामक गुजराती किताब प्रकाशित करके उसी किताब ी घर बैठकर ओपन बुक एक्झाम का आयोजन किया गया । दिनांक ११ अगस्त, ००२, रविवार को संस्था के कार्यकारी कार्यालय का उद्घाटन गुजरात के नामी णितज्ञ व वैज्ञानिक **डॉ. पी. सी. वैद्य** व शेठ आणंदजी कल्याणजी पीढी के प्रमुख न श्रावक श्रेष्ठिवर्य **श्री श्रेणिकभाई** के करकमलों से किया गया । साथ साथ संस्था ी वेबसाईट का उद्घाटन बहुआयामी प्रतिभासंपन्न **डॉ. मधुसूदनभाई ए. ढांकी** ने िया। इसी अवसर पर अतुल (वलसाड) से **डॉ. विमलाबहन एस. लालभाई, डॉ. भिजित् सेन (IPR), डॉ. नरेन्द्रभाई भंडारी (PRL), डॉ. जितेन्द्रभाई बी. शाह Director, L. D. Institute of Indology, Ahmedabad), डॉ. रमणभाई ची. ाह (मुंबई), आभामडल के निष्णात डॉ. जे. एम. शाह (मुबंई)** पधारे थे ।

ुसंधान के विभिन्न विषय :

भौतिकी :

(१) शुद्ध आत्मा व परमाणु का वेग

(२) प्रकाश का वेग व प्रकाश का स्वरूप

(३) विद्युद्चुंबकीय तरंगें

(४) गुरुत्वाकर्षण का अस्तित्व व उसका स्वरूप

(५) विश्वविज्ञान, ब्रह्मांड का स्वरूप व उसमें कार्य करनेवाले सूक्ष्म तत्त्व / बल

(६) आत्मा व पुद्गल का संबंध और उसका स्वरूप

(७) मंत्रजाप की व संगीत की ध्वनि व उसका असर, ध्वनि का व उसके वर-व्यंजन आदि वर्णों का रंग

(८) रंग का असर व रंगचिकित्सा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(९) अवकाश, समय व पुद्गल द्रव्य का स्वरूप व संबंध

२. ख-भौतिकी :

(१) ब्रह्मांड की संरचना : प्राचीन मान्यताएँ व आधुनिक विज्ञान की मान्यताएँ

(२) ब्रह्मांड आदि या अनादि ?

(३) ब्रह्मांड में प्राप्त श्याम-गर्त, श्वेत-वामन व न्यूट्रॉन स्टार्स

(४) द्रव्य व प्रतिद्रव्य की शोध

३. गणित :

(१) संख्याएँ व गणित की उत्पत्ति व उसका आविष्कार किसने कैसे किया ?

(२) आधुनिक गणित व प्राचीन गणित, जैन गणित व वैदिक गणित

(३) π का मूल्य, शून्य का आविष्कार, उसकी विभावना, उपयोग व उसका मूल्य

४. पर्यावरण :

(१) पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन साहित्य, इतिहास, समाजविद्या, व अध्यात्म का अध्ययन

(२) हिन्दु धर्म की विभिन्न शाखाएँ, द्वैतवाद व अद्वैतवाद इत्यादि का अध्ययन

(३) पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु व वनस्पति के जीवों का अन्य प्राणी व मनुष्य उपर का उपकार

५. जीव-विज्ञान :

(१) आभामंडल के द्वारा रोग-निदान, वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियाँ, टेलिपथी व दूर-चिकित्सा पद्धति

(२) अतीन्द्रियज्ञान व आंतःस्फूरणा

६. भाषाविज्ञान :

संस्कृत, प्राकृत, पाली, ब्राह्मी इत्यादि प्राचीन भाषाएँ

७. धर्म :

हिन्दु, बौद्ध, जैन व विविध धर्म के क्रिया-कांड. मूर्तिपूजा, उपवास, व्रत-नियम, धार्मिक त्योहार आदि

८. मंत्रविज्ञान :

स्तुति, स्तवना, जाप, हिन्दु व बौद्ध इत्यादि परंपरा के विभिन्न मंत्र, यंत्र

९. आहारविज्ञान-जीवनविज्ञान :

आहार के प्रकार व उसका जीवन में असर बाजारू फास्ट फूड का विघातक असर

१०. योग व ध्यान :

शरीर, मन, स्वभाव व आत्मा के उपर योग व ध्यान का असर

N. B. इस संस्था को प्राप्त दान IT 80 - G (5) अनुसार करमुक्त हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

RISSIOS द्वारा प्रकाशित अनुसंधान साहित्य

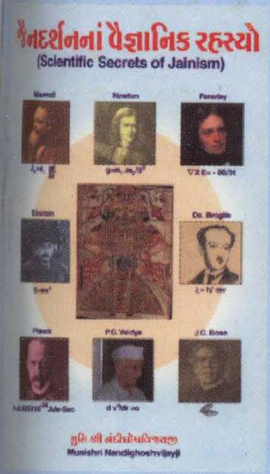

मूल्य रु. १२०

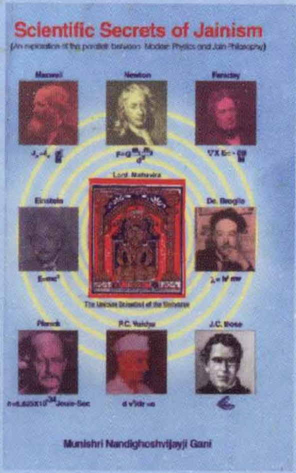

मूल्य रु. ३००

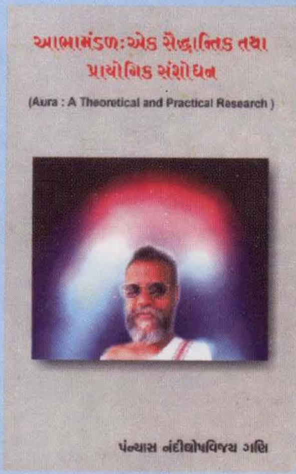

मूल्य रु. ५०

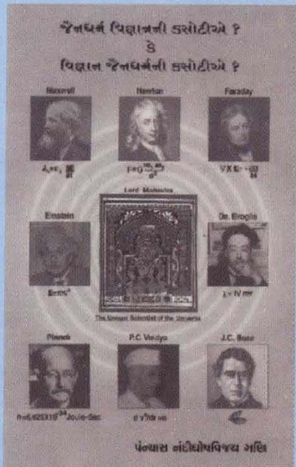

मूल्य रु. २०

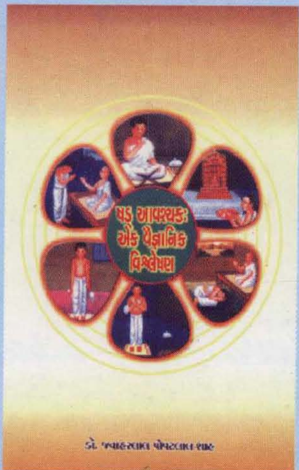

मूल्य रु. ३५

RISSIOS में लाभ लेने की योजनाएँ

Founder Member रु. 1,51,000

Life Member रु.1,00,000

Donation for Cupboard रु. 5,000

इंट योजना 1 इंट के रु. 999=00

11 इंट के दाता का नाम श्वेत आरस में लिखा जायेगा ।

21 इंट के दाता का नाम ग्रेनाइट में रुपेरी अक्षर से लिखा जायेगा ।

51 इंट के दाता का नाम ग्रेनाइट में सुवर्ण अक्षर से लिखा जायेगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिर्फ मननीय ही नहीं, दिशादर्शक भी

मनीषी मुनि-कृतिकार जैनतत्त्वदर्शन पर समय-समय पर अपने तर्कसंमत विचार प्रस्तुत करते रहें हैं। मुनि नन्दीघोषविजयजी एक प्रखर-तेजोमय चिन्तक हैं। उन्होंने जैनधर्म/दर्शन के वैज्ञानिक पक्ष का गहन अध्ययन किया है तथा किसी भी वैचारिक उलझन अथवा शंका को उस सीमा तक ले जाने की कोशिश की है, जहाँ पहुँचकर उसका कोई असंदिग्ध समाधान संभव हो। लेखक पूर्वग्रहमुक्त निर्मल मन-मानस के धनी हैं, उसके चित्त पर कोई धुँआ कोहरा नहीं है। विज्ञान के पक्ष में उसकी जानकारी अचूक है, जिसका उसने कदम-दर-कदम फूँक फूँक कर उपयोग किया है।

निश्चय ही किसी भी तुलनात्मक अध्ययन लेखन की अपनी सीमाएँ होती है तथापि विद्वान् लेखक ने अत्यन्त निर्मल-निर्भ्रान्त दृष्टि से जैनाध्यात्म/जैनाचार के उन तमाम पक्षों की तर्कसंगत समीक्षा की है, जिन पर उनसे पहले विचार-विमर्श तो हुआ था किन्तु संभवतः इतनी पारदर्शिता से नहीं। किसी भी प्रश्न को उसके बहुआयामी वजूद में देखना, उसका तुलनात्मक अध्ययन करना और पाठक-के तल पर उसे सरल शब्दों में प्रस्तुत करना एक मुश्किल काम था, तथापि मुनिश्री ने उसे संपूर्ण निर्विघ्नता के साथ संपन्न किया है।

कुल मिलाकर प्रस्तुत कृति न केवल मननीय है, वरन् एक योग्य/समर्थ मार्गदर्शक भी है। जो भी व्यक्ति जैनधर्म को सिर्फ अध्यात्म मानकर चल रहा है, उसे इसके वैज्ञानिक आधार को पुष्ट करने के लिये प्रस्तुत कृति से काफी युक्तियुक्त जानकारी मिल सकेगी।

– डॉ. नेमिचंद जैन (संपादक-पत्रकार : तीर्थंकर, अप्रैल, 1995, पृ. 17)

''प्राचीन ग्रंथों के वैज्ञानिक तथ्यों के साथ आधुनिक विज्ञान के तथ्यों की कसौटी क्यों न की जाय ?'' विचार के साथ मुनि नन्दीघोषविजयजी का विज्ञान व अध्यात्म का प्रवास शुरु हुआ। शुरु में वे अकेले ही थे, बाद में विज्ञानजगत के बडे बडे विज्ञानी उसमें सम्मिलित होते रहें। उसके फल स्वरुप उनकी प्रेरणा से *''भारतीय प्राचीन साहित्य वैज्ञानिक रहस्य अनुसंधान संस्था''* **(Research Institute of Scientific Secrets from Indian Oriental Scriptures-RISSIOS)** की स्थापना की गई है। इस संस्था की एक वेबसाईट भी है, जिसका नाम है - **http//www.jainscience-rissios.org**

दीक्षा लेने के बाद शुरु में उन्हों ने संस्कृत-प्राकृत का अध्ययन किया फिर जैन आगमो की दृष्टि से आधुनिक विज्ञान का अध्ययन शुरु किया। उसके परिणामतः उन्हों ने *''जैनदर्शन के वैज्ञानिक रहस्य''* नामक गुजराती किताब लिखी। इसकी प्रस्तावना भी गुजरात के नामी गणित-विज्ञानी डॉ. प्र.चु. वैद्य ने लिखी है। मुनिश्री के इसी पुस्तक की अंग्रेजी आवृत्ति भी प्रकाशित की गई है, जिसकी प्रस्तावना लिखने के लिये उन्हों ने वर्तमान राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कमाल को लिखा था तो उन्हों ने नम्रता के साथ लिखा कि खगोल का उसको ज्यादा अभ्यास नहीं है, अतः ख-भौतिकी के विख्यात विज्ञानी डॉ. जयंत नारलीकर के पास प्रस्तावना लिखाने का अनुरोध किया और उन्हों ने अंग्रेजी आवृत्ति की कॉमेन्ट्स लिखी।

– तुषार भट्ट (रेतीमां रेखाचित्रो, गुजरात टाईम्स, सप्तक पूर्ति, पृ. 4 न्यूयोर्क, दि. 17, जनवरी, 2003)

ISBN 81-901845-3-9

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org